श्री आवश्यक सूत्र

मलयगिरीय टीका अव. समवसरण वक्तव्यता के द्वार-

गा. 543 A. समवसरण B. कितने सामायिक C. रूप D. पृच्छा E. व्याकरण F. श्रोतृपरिणाम G. दान H. देवमाल्य I. माल्यानयन J. गणधर देशना

A. समवसरण- कैसे बनाते है?

B. कितने सामायिक- मनुष्यादि कितनी सामायिक स्वीकारते हैं अथवा कितनी दूर से साधु को समवसरण में आना चाहिए।

C. रूप- भ. का रूप

D. पृच्छा- भ. को उत्कृष्ट रूप से क्या प्रयोजन है अथवा कितने लोग एकसाथ संशय पूछते हैं।

E. व्याकरण- भ. का उत्तर

F. श्रोतृपरिणाम- श्रोताओ का परिणाम

G. दान- प्रीतिदान और वृत्तिदान कितना देते हैं?

H. देवमाल्य- बलि वि. कौन बनाता है? कितना बनाते हैं?

I. माल्यानयन की विधि।

J. तीर्थ = गणधर देशना।

अव. A. समवसरण द्वार-

9. भ. जहाँ देशना देते हैं, वहाँ नित्य समवसरण होता है? उ.-

गा. 544-5 जिस क्षेत्र में पहले कभी समवसरण न हुआ हो वहाँ अथवा जहाँ पहले समवसरण हुआ हो वहाँ यदि महर्द्धिक देव आए तो ही समवसरण की रचना होती है।
जहाँ समवसरण बनाना हो वहाँ आभियोग्य देव संवर्तक वायु विकुर्वकर भूमि को रज से शुद्ध करते हैं। जो रज नीचे है, वह पुनः उठे नहीं इसलिए बादल विकुर्वकर पानी की वृष्टि करते हैं, जिससे भूमि निरुत्तरज हो। तथा पृथ्वी की विभूषा के लिए पुष्प के बादल विकुर्वकर पुष्पवृष्टि करते हैं।
1 यो. तक चंद्रकांतादि मणि, देवकांचन और इंद्रनीलादि रत्न से भूमि को अपूर्व गंध से युक्त करते हैं।

* मणि = स्थल में उत्पन्न होने वाले। रत्न = जल में उत्पन्न होने वाले।
* अभियोगं अर्हन्ति इति आभियोग्याः देवाः।

* भावार्थ- सभी जगह समवसरण रचे ऐसा नियम नहीं है। जहाँ कभी समवसरण न रचा हो, वहाँ और जहाँ कोई महर्द्धिक देव आने वाले हो, वहाँ समवसरण रचते हैं। ('अन्यत्र त्वनियमः' पद का अर्थ)

हरिभद्रीय टीका → मलयगिरि म. अनुसार ऐसा अर्थ है कि मणि-कांचन-रत्न सुगंधि होने से भूमि सुगंधि होती है जबकि हरिभद्र सूरि म. अनुसार सुगंधि ऐसी भूमि मणि-कांचन-रत्न से विचित्र होती है।

मलयगिरीय टीका

गा. 546 आभियोग्य देव सभी दिशाओं में 'काँटे नीचे, पंखुड़ी ऊपर' इस प्रकार और प्रबल गंध प्रसर वाले 5 वर्ण के पुष्पों की वृष्टि करते हैं।

गा. 547 व्यंतर देव चारों दिशा में तोरण बनाते हैं। तोरण पर पुतलियाँ, छत्र, मगर का मुख, अष्टमंगल वि. की विशिष्ट रचना होती है।

गा. 548-50

प्रकार	रचयिता	किसक	कपिशीर्षक
अभ्यंतर	वैमानिक इंद्र	रत्न	पंचवर्णमणि
मध्य	ज्योतिष्क	कनक	रत्नमय
बाह्य	भवनपति	रजत	हेममय

गा. 551 सभी द्वार रत्नमय भवनपति बनाते हैं। व्यंतर सभी तोरण बनाते हैं। सभी दिशाओं में मनोहारी गंधयुक्त धूप घटिका व्यंतर विकुर्वते हैं।

गा. 552 तीर्थंकर को नमन करते देव सिंहनाद करते हैं।

गा. 553 अभ्यंतर प्राकार के मध्यभाग में अशोकवृक्ष भगवान् से 12 गुना होता है। उसके नीचे रत्नमय पीठ, पीठ के ऊपर देवच्छंदक, उसके अंदर पादपीठ युक्त स्फटिकमय सिंहासन, ऊपर 3 छत्र, यक्ष के हाथ में रहे 2 चामर, कमल पर धर्मचक्र। और भी जो कुछ करणीय हो वह व्यंतर देव करते हैं। यह सभी तीर्थंकरों के समवसरण का साधारण न्याय है।

अन्य मत - अशोक वृक्ष शक्र करता है, 3 छत्र ईशानेन्द्र, चामर बलि और चमर धारण करते हैं।

स्व. प्र. जब-जब समवसरण होता है तब-तब क्या यही व्यवस्था रहती है?

गा. 554 यदि कोई महर्द्धिक इंद्र/सामानिक देव आते हैं तो वे ही पूरा समवसरण बनाते हैं। यदि वे न आए तो ~~भवप~~ भवनपति आदि समवसरण करे या न भी करे।

गा. 555 इस प्रकार देवों द्वारा निर्मित समवसरण में भ. सूर्योदय होने पर और शाम को तीसरा प्रहर पूर्ण होने पर पूर्वद्वार से प्रवेश करते हैं। भ. दो कमलों पर चलते हैं, पीछे 7 कमल रहते हैं। जब भ. आगे पैर रखते हैं तब पीछे वाला कमल आगे आ जाता है।

गा. 556 भ. पूर्वद्वार से प्रवेश कर चैत्यवृक्ष की प्रदक्षिणा कर पूर्वाभिमुख बैठते हैं। शेष 3 दिशा में देव प्रतिकृति बनाते हैं जिससे सबको लगे कि भ. मुझे ही बोल रहे हैं।
भ. के पास नीचे हमेशा एक गणधर बैठते हैं। वह प्रायः ज्येष्ठ ही होते हैं। वे दक्षिण-पूर्व दिशा में एकदम ~~पास~~ पास भी नहीं, एकदम दूर भी नहीं बैठते हैं। शेष गणधर भी तीर्थंकर के आस-पास बैठते हैं।

अव. ~~8~~ ~~प्रश्न~~ – तीर्थंकर की प्रतिकृति क्या तीर्थंकर जैसी ही होती है –
गा. 557 वे प्रतिकृति भी तीर्थंकर के प्रभाव से तीर्थंकर जैसी ही होती है।

~~गणधर भी पूर्वद्वार से प्रवेश कर ती~~
गा. 558-9 गणधर के बाद केवली पूर्वद्वार से प्रवेश कर भ. को 3 बार प्रदक्षिणा कर 'नमस्तीर्थाय' बोलकर गणधरों के पीछे बैठते हैं। (यहाँ तीर्थ = गणधर)
शेष अतिशायी (मनःपर्याय ज्ञानी, अवधिज्ञानी, 14पूर्वी, 10पूर्वी ... आमर्षौषधि आदि लब्धि वाले) 3 बार ~~●~~ प्रदक्षिणा कर 'नमस्तीर्थाय' और 'नमः केवलिभ्यः' बोलकर केवलियों के पीछे क्रमशः बैठते हैं।
शेष अतिशयरहित मुनि 3 प्रदक्षिणा कर 'नमस्तीर्थाय' 'नमः केवलिभ्यः' 'नमोऽतिशायिभ्यः' बोलकर बैठते हैं।
वैमानिक देवी 3 प्रदक्षिणा कर 'नमस्तीर्थाय' 'नमः केवलिभ्यः' 'नमोऽतिशायिभ्यः' 'नमः साधुभ्यः' बोलकर साधुओं के पीछे ~~बैठती हैं~~ खड़ी रहती हैं।

साध्वियाँ 3 प्रदक्षिणा कर 'नमस्तीर्थाय' 'नमः केवलिभ्यः' 'नमोऽतिशायिभ्यः' 'नमः शेष-साधुभ्यः' बोलकर वैमानिक देवियों के पीछे ~~बैठते हैं~~ खड़ी रहती हैं।
भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क की देवियाँ दक्षिण द्वार से प्रवेश कर 3 प्रदक्षिणा कर दक्षिण पश्चिम यानि नैऋत्य कोण में खड़े रहती हैं। भवनवासिनी के पीछे ज्योतिष्की, पीछे व्यंतरी।

गा. 559 560 भा. 116-119 भवनपति, ज्योतिष्क, व्यंतर देव पश्चिम द्वार से प्रवेश कर 3 प्रदक्षिणा कर 'नमस्तीर्थाय नमः केवलिभ्यः नमोऽतिशायिभ्यः नमः शेष साधुभ्यः' बोलकर उत्तरपश्चिम में बैठते हैं। भवनपति के पीछे ज्योतिष्क, पीछे व्यंतर।
वैमानिक देव, मनुष्य और मनुष्य स्त्री उत्तरद्वार से प्रवेश कर 3 प्रदक्षिणा कर उत्तर-पूर्व में बैठते हैं।
यहाँ ऐसा संप्रदाय है कि सभी देवी नहीं बैठती, मात्र देव, मनुष्य और मनुष्य स्त्री ही बैठते हैं।

हरिभद्रीय टीका → यहाँ मूलटीकाकार ने देवियों को बैठना या खड़े रहना स्पष्ट अक्षरों से नहीं कहा है, मात्र अवस्थान ही कहा है। कुछ आचार्य पूर्वाचार्यों के उपदेश से लिखित पट्कादि के चित्रकर्म अनुसार 'सर्व देवी नहीं बैठती, देव-पुरुष और स्त्रियाँ बैठती हैं' ऐसा कहते हैं।

मलयगिरीय टीका गा. 561 इस प्रकार एक-एक दिशा में 3-3 का संनिवेश होता है। पश्चिम दिशा में केवल स्त्री और केवल पुरुष होते हैं, पूर्व दिशा में मिश्र होते हैं।

★ गा. 558-561 की Summary- (प्रथम गढ़ की व्यवस्था)

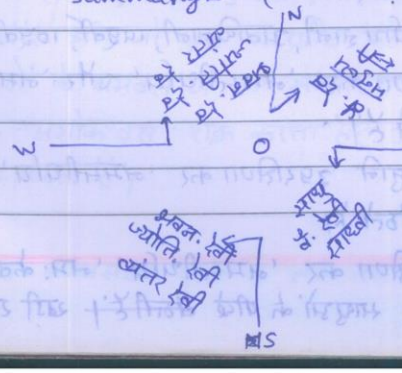

अव. समवसरण में रहे देव और मनुष्यों की मर्यादा –

गा. 562 जो अल्पऋद्धि वाले भ. के समवसरण में पहले से बैठे हो, वे आते हुए महर्द्धिक को प्रणाम करते हैं। जो महर्द्धिक पहले से बैठे हो, तो आते हुए अल्पऋद्धि वाले उन्हें प्रणाम करते हैं।
उन्हें परस्पर अधीनता, विकथा, मत्सर, भय इत्यादि नहीं होते।

अव. प्रथम प्राकार की व्यवस्था बताई। अब दूसरे और तीसरे प्राकार की व्यवस्था –

गा. 563 दूसरे प्राकार में तिर्यंच, तीसरे में वाहन होते हैं। ~~अपि शब्द से इस मनुष्य और देव भी होते हैं। वे~~
प्राकार के बाहर अर्थात् समवसरण के बाहर तिर्यंच-मनुष्य-देव होते हैं। वे कभी मिश्र होते हैं, कभी प्रत्येक होते हैं। वे प्रवेश करते हुए अथवा निकलते हुए होते हैं।

A. समवसरण द्वार पूर्ण।

अव. B. 'कितने' द्वार –

गा. 564 जब समवसरण में कोई सर्वविरति, देशविरति अथवा सम्यक्त्व, तीनों में से कोई एक भी ग्रहण करने वाला होता है, तभी भ. देशना देते हैं। अन्यथा अमूढलक्ष्य वाले तीर्थंकर देशना नहीं देते।

प्र. यदि ऐसा है तो देवों द्वारा समवसरण बनाना निरर्थक भी हो सकता है क्योंकि कभी समवसरण बनाने पर भी भ. देशना न दे?

उ. तीनों काल में ऐसा कभी नहीं होता कि भ. देशना देने पर तीनों में से एक भी सामायिक कोई न स्वीकारे।

अव. कौन कितनी सामायिक स्वीकारता है –

गा. 565 मनुष्य 4 सामायिक स्वीकारते हैं – सम्यक्त्व, श्रुत, देशविरति, सर्वविरति।
तिर्यंच 3 सामायिक – सर्वविरति छोड़कर।
देव 1 सामायिक – सम्यक्त्व।

अव. भ. देशना कैसे देते हैं –

गा. 566 'नमस्तीर्थाय' बोलकर भ. अर्धमागध भाषात्मक शब्द से, सभी देव-नर-तिर्यंच संज्ञी जीवों को साधारण शब्द से देशना देते हैं। वाणी 1यो. व्यापी। भ. अतिशय सहित होने से।

अव. कृतकृत्य ऐसे भ. तीर्थप्रणाम क्यों करते हैं? –

गा. 567 1. तीर्थ = श्रुतज्ञान। तीर्थंकरता श्रुतज्ञान पूर्वक ही होता है क्योंकि श्रुत के अभ्यास से ही तीर्थंकरत्व की प्राप्ति होती है। जो जिससे उत्पन्न होता है वह उसे पूजता है अतः तीर्थंकर श्रुत को पूजते हैं।

2. लोक पूजितपूजक है अर्थात् जो व्यक्ति लोक द्वारा पूजा जाता है, वह पूजित। वह पूजित भी जिसकी पूजा करता है, पूरा लोक उसे पूजता है। अतः तीर्थंकर के तीर्थ को पूजने से पूरा लोक भी तीर्थ को पूजता है।

3. भ. वैनयिक धर्म कहते हैं। अतः प्रथम स्वयं विनय करते हैं।

अव. साधुओं को कितने दूर से समवसरण में आना चाहिए? –

गा. 568 जिसने समवसरण पहले देखा न हो ऐसे साधु को 12यो. दूर से भी आना चाहिए। यदि न आए तो चतुर्लघु प्रायश्चित्त।

अव. 8. रूप – पृच्छा द्वार –

गा. 569 सभी देव सुंदर रूप बनाने की सर्व शक्ति से एक अंगुठा बनाए तो भी वह अंगुठा भ. के अंगुठे के सामने कोयले जैसा लगता है।

अव. प्रसंग से गणधरादि का रूप कहते हैं –

गा. 570 तीर्थंकर के रूप से गणधर का रूप अनंतगुण हीन, आहारक शरीर – अनुत्तर – ग्रैवेयक – अच्युत – आरण – प्राणत – आनत – सहस्रार – महाशुक्र – लांतक – ब्रह्मलोक – माहेन्द्र – सनत्कुमार – ईशान – सौधर्म – भवनपति – ज्योतिष – व्यंतर – चक्री – वासुदेव – बलदेव – महामांडलिक में अनंत – अनंत गुण हीन रूप। शेष राजा और लोगों में षट्स्थानपतित रूप होता है।

अव. अन्य लब्धियाँ :-

गा. 571 । संघयण-संस्थान, वर्ण, गति, सत्त्व (वीर्यांतराय के क्षयोपशम से होने वाला आत्म परिणाम), सार - 29. बाह्य = गुरुत्व आंतर = ज्ञानादि आदि अनुत्तर नामकर्म के उदय से होते हैं।

अव. प्र. भ. को छद्मस्थ या केवलिकाल में अन्य गोत्रादि प्रकृतियाँ भी अनुत्तर
गा. 572 होती हैं? -
तीर्थंकर और गणधर को अन्य प्रकृतियाँ उदय या उपशम में भी अनुत्तर होती हैं।

अव. प्र. असातावेदनीयादि प्रकृतियाँ उन्हें दुःखद क्यों नहीं होती? -
गा. 573 अशुभ प्रकृतियाँ उन्हें दूध में एक बिंदु निंबु के रस की तरह दुःखद नहीं होती।

अव. प्र. उत्कृष्ट रूप से भ. को क्या प्रयोजन? - (D. पृच्छा द्वार -)
गा. 574
1. धर्म के उदय से रूप मिलता है, ऐसा मानकर श्रोता धर्म में जुड़े।
2. रूपवान् भी धर्म करता है, ऐसा मानकर श्रोता धर्म करे।
3. रूप से आदेय वाक्य वाले होते हैं।
4. श्रोताओं के रूपादि के अभिमान का अपहार होता है।

अव. अथवा (D. पृच्छा द्वार -) भ. बहुत सारों के संशयों का नाश कैसे करते हैं? -
गा. 575 यदि क्रम से एक-एक संशय का नाश करे तो असंख्य देवों के असंख्य संशयों का नाश असंख्य काल में भी नहीं होगा। अतः वे एकसाथ ही सबके संशय नष्ट करते हैं।

अव. युगपद् संशयनाश के गुण - (E. व्याकरण)
गा. 576
1. युगपद् संशयनाश से वे रागद्वेषरहित रूप प्रसिद्ध होते हैं। यदि युगपद् संशयनाश न करे तो एकसाथ संशय करने वालों में कालभेद करने से राग-द्वेष वाले चित्त का प्रसंग आता।
2. भ. की विशेष ऋद्धि प्रसिद्ध होती।
3. अकालहरण होता है - यदि भ. क्रम से संशयनाश करें तो कोई जीव संशय नष्ट होने के

पहले ही मर जाए जिससे वह भ. को पाकर भी संशय सहित रह जाएगा। अतः भ. युगपत् संशय नाश करते हैं, जिससे कोई जीव संशय सहित न रहे।

4. हृदय में रहे संशय नष्ट होने से उन्हें विश्वास होता है कि ये सर्वज्ञ हैं।

5. उनके अचिंत्य गुण होते हैं।

प्र. सामान्य केवली यदि युगपत् संशय नाश न करे तो उन्हें भी राग-द्वेष की आपत्ति आएगी?

उ. उन्हें इस प्रकार देशना ही नहीं होती।

अब. भ. की वाणी स्व-स्व भाषा में कैसे परिणमती है –

गा. 577 जैसे वर्षा का पानी रसवती भूमि पर गिरे तो सुगंधी होता है और ऊखर पर गिरे तो विपरीत होता है, वैसे भ. की वाणी सभी श्रोताओं को स्वभाषा में परिणमित होती है।

अब. वाणी का सौभाग्य गुण – (F. श्रोतृपरिणाम)

गा. 578 इस वाणी में श्रोताओं का तदुपयोग ही होता है, उपयोग होने पर भी उन्हें निर्वेद नहीं होता। वृद्धा दासी का उदाहरण–

वणिक् की वृद्धा दासी × जेठ महीने में सुबह लकड़ी लेने गई × भूखी-प्यासी दोपहर को आई × बहुत कम लकड़ी लाई ' ऐसा कहकर मारकर पुनः भेजा × चौथे प्रहर में वापस आ रही थी तब एक लकड़ी नीचे गिरी × झुकी × तभी तीर्थंकर की आवाज सुनाई × वह ऐसे ही सुनने लगी × उसे भूख-प्यास बिल्कुल नहीं लगा ××

गा. 579 यदि भ. धर्म कहते रहें तो श्रोता पूरा आयुष्य ऐसे ही खपा दे किंतु भूख-प्यास परिश्रम कुछ न लगे।

अब. 6. दानद्वार –

गा. 580 चक्री आदि राजा को जो तीर्थंकर भ. के समाचार देता है, उसे वृत्तिदान और प्रीतिदान कहते हैं।

वृत्ति = जो नियुक्तपुरुषों को नियत कार्य अनुसार दी जाती है।

प्रीति = भ. के आगमन के समाचार से खुश होकर जो नियुक्तपुरुषों से अन्य को

दिया जाता है।
वृत्ति = 12½ लाख सुवर्ण। प्रीति = 12½ करोड़ सुवर्ण। ये चक्री देते हैं।
गा. 581 वासुदेव इतनी ही चांदी, मांडलिक राजा 12½ हजार रू. (वृत्ति) 12½ लाख रू. (प्रीति) दान देते हैं।
गा. 582 अन्य भी सेठ वि. भी देते हैं।
गा. 583 इस प्रकार देने से लाभ →
1. देव भी भ. की पूजा करते हैं। इससे उनका अनुवर्तन होता है।
2. भ. की भक्ति-पूजा होती है।
3. नए श्रावक स्थिर होते हैं।
4. कहने वाले की अनुकंपा होती है।
5. साता वेदनीय कर्म बंधता है।
6. तीर्थ प्रभावना होती है।

अव. H. माल्य द्वार –
गा. 584 भ. प्रथम पोरसी संपूर्ण देशना देते हैं। तब देवमाल्य यानि बलि प्रवेश करता है। बलि को कौन करता है –
बलि चक्री-मांडलिकादि राजा करते हैं। वे नहीं होने पर विशिष्ट नगरजन करते हैं।
बलि फोतरे निकाले हुए चावल का होता है, जिसे लोकभाषा में 'कलमा' कहते हैं। दुर्बल स्त्री द्वारा कंडन किए हुए और बलवान् स्त्री द्वारा झरके हुए ऐसे चावल। (दुर्बल इसलिए ली ताकि चावल टूट न जाए और बलवान् इसलिए ली ताकि फोतरे रह न जाए)। वह एक आढक प्रमाण होता है।
गा. 585 सेठ वि. के घर में उसे बीनने के लिए देते हैं, फिर पुनः लाते हैं। देव उसमें सुगंधी द्रव्य डालते हैं।

अव. I. माल्यानयन द्वार –
गा. 586 उस बलि को लेकर राजा वि. देवों के साथ वाजित्र के नाद पूर्वक पूर्व द्वार से समवसरण में प्रवेश करते हैं। जब बलि प्रथम प्राकार में प्रवेश करता है, तब भ. धर्मकथा पूर्णकर मौन होते हैं। राजा वि. 3 प्रदक्षिणा कर भ. के चरणों में

बलि डालते हैं। वह नीचे गिरने के पहले ही आधा भाग देव ग्रहण करते हैं।
गा. 587 शेष आधे का आधा राजा वि. लेते हैं। शेष पाव भाग प्राकृत लोगों के सिर पर उछाला जाता है।
बलि का प्रभाव - उसका एक दाना भी जिसके सिर पर गिरता है, उसके रोग नष्ट होते हैं और नए रोग 6 मास तक नहीं होते।
ऐसे बलि उछालने के बाद भ. उत्तर द्वार से निकलकर दूसरे प्राकार में पूर्व दिशा में देवच्छंदक में रहते हैं।
दूसरी पोरसी में गणधर देशना देते हैं।
[देवच्छंदक उत्तर-पूर्व दिशा में — हरिभद्रीय टीका]

अव. प्र- दूसरी पोरसी में भी तीर्थंकर भ. देशना क्यों नहीं देते? —
गा. 588 1. भ. के खेद का विनोद यानि परिश्रम का नाश होता है।
2. शिष्य के गुणों का दीपन।
3. श्रोताओं को दोनों ओर से विश्वास होता है —
जैसे भ. बोलते हैं, वैसे ही गणधर भी बोलते हैं।
4. शिष्याचार्य का क्रम बताने के लिए — शिष्य को गुरु से सुनकर योग्य शिष्य को अर्थ देना चाहिए।

अव. गणधर कहाँ बैठकर देशना देते हैं —
गा. 589 राजा द्वारा लाए हुए सिंहासन पर। वह न हो तो तीर्थंकर भ. के पादपीठ पर।

अव. उनकी विशेषता —
गा. 590 वे अवधि वि. अतिशय ज्ञान से रहित होने पर भी सभी अभिलाप्य पदार्थों के प्रतिपादन में समर्थ हैं। भूत-भविष्य में असंख्य भवों तक जान सकते हैं।

इस प्रकार समवसरण सामान्य से कहा गया। द्वार गा. 545 पूर्ण।
अब प्रकृत कहते हैं। —

गा. 591-2 ऐसे समवसरण में भ. पधारे। वहाँ देव आते हैं।
इंद्रभूति वि. पंडित यज्ञपाटक में सोचते हैं कि देव यज्ञ में आ रहे हैं, तभी देव तो आगे निकल जाते हैं। तब उन्हें पता चला कि कोई सर्वज्ञ आया है।
सबसे पहले अहंकार से इंद्रभूति सर्वज्ञता का खंडन करने चला।

गा. 598-641 तक 'गणधरवाद'।

अव. गणधर वक्तव्यता की द्वार गाथा -

गा. 642 (द्वार) क्षेत्र, काल, जन्म, गोत्र, गृहस्थ-छद्मस्थ-केवलिपर्याय, आयु, आगम, निर्वाण, तप।
क्षेत्र- जन्म क्षेत्र
काल - जन्म नक्षत्र
~~गोत्र~~ जन्म - जन्म माता-पिता के अधीन होने से माता-पिता के नाम कहेंगे।
आगम- ज्ञान
निर्वाण - भ. होते हुए ही किसका निर्वाण हो गया।
तप- किस तप पूर्वक मोक्ष गए।
च शब्द से संहननादि भी कहेंगे।

* गा. 593-7 में रहे गणधर के नाम, उनके संशय और परिवार मान, इस द्वार गाथा के साथ Pg. No. 14-15 पर Table में। अन्य द्वार और टिप्पणियाँ यहाँ से लिखी हैं।

(i) मगध देश में गोब्बर ग्राम।
(ii) तुंगिक संनिवेश में वत्सभूमि में कौशांबी नगरी।
(iii) मंडिकपुत्र और मौर्यपुत्र की माता एक ही है - विजयदेवा, पिता अलग-अलग है। धनदेव की मृत्यु के बाद मंडिकपुत्र सहित विजयदेवा को मौर्य ने धारण किया, उनसे मौर्यपुत्र का जन्म हुआ। इस देश में अविरोध होने से यह दूषण नहीं है।
(iv) प्र. प्रथम गणधर और तृतीय गणधर के संशय में क्या अंतर है?
उ. तृतीय गणधर को जीव सत्ता में संशय नहीं था। जीव होने पर भी वह शरीर से अलग है या नहीं, यह संशय था जबकि प्रथम गणधर को जीव सत्ता में संशय था।

गा. 593-1
643-59

S.No.	गणधरनाम	जन्मस्थान	पिता	माता	जन्मनक्षत्र	गोत्र	गृहस्थपर्याय (वर्ष)
1.	इंद्रभूति	गोबरग्राम	वसुभूति	पृथिवी	ज्येष्ठा	गौतम	50
2.	अग्निभूति	"	"	"	कृत्तिका	"	46
3.	वायुभूति	"	"	"	स्वाति	"	42
4.	व्यक्त	कोल्लाकसं.	धनमित्र	वारुणी	श्रवण	भारद्वाज	50
5.	सुधर्मा	"	धम्मिल्ल	भद्दिला	उत्तराफाल्गुनी	अग्निवेश्यायन	50
6.	मंडिकपुत्र	मौर्यसं.	धनदेव	विजयदेवा[iii]	मघा	वासिष्ठ	65
7.	मौर्यपुत्र	"	मौर्य	"	रोहिणी	काश्यप	53
8.	अकंपिक	मिथिला	देव	जयंती	उत्तराषाढा	गौतम	48
9.	अचलभ्राता	कोशला	वसु	नंदा	मृगशिर	हारित	46
10.	मैतार्य	कौशांबी[ii]	दत्त	वरुणदेवा	आश्विनी	कौण्डिन्य	36
11.	प्रभास	राजगृह	बल	अतिभद्रा	पुष्य	"	16

आगम- लौकिक में सभी 14[viii] विद्या के पारगामी और उपाध्याय थे।
लोकोत्तर - सभी द्वादशांगी, 14 पूर्वी थे।

निर्वाण - भ. महावीर स्वामी की उपस्थिति में ही 9 गणधर निर्वाण को प्राप्त हुए। इंद्रभूति और सुधर्मास्वामि भ. के निर्वाण के बाद निर्वाण को प्राप्त हुए। सभी गणधर काल करते हुए स्वयं का गण सुधर्मास्वामी को देते हैं क्योंकि उन्हें परंपरा की प्रवृत्ति में हेतुरूप आचार्य असंभव होते हैं। सुधर्मा स्वामी ने जंबूस्वामी को गण दिया।

तप - सभी गणधर 1 मास तक पादपोपगमन अनशन पूर्वक कालधर्म को प्राप्त हुए। सभी गणधर वज्रऋषभ संहनन वाले, समचतुरस्र संस्थान वाले और आमर्षौषधि आदि सभी लब्धियों से संपन्न थे।

(v) प्र. कर्मसंशय से इसका क्या विशेष है?
उ. दूसरे गणधर को कर्मसंशय कर्म की सत्ता विषयक था। यह तो अस्तित्व होने पर भी जीव और कर्म के संयोग तथा विभाग विषयक है।

(vi) प्र. कर्म होने पर भी पुण्य में संशय कैसे?
उ. कर्म होने पर भी क्या पुण्य ही प्रकर्ष पर होने से सुख और अल्प होने से दुःख का कारण है, कि उससे अतिरिक्त पाप भी है? अथवा क्या एक ही कर्म दोनों

पर्याय	छद्मस्थ पर्याय (वर्ष)	केवलि प. (वर्ष)	आयु (वर्ष)	परिवार	संशय
	30	12	92	500	जीव है या नहीं ?
	12	16	74	"	कर्म है या नहीं ?
	10	18	70	"	जीव और शरीर अलग है या नहीं ? (iv)
	12	18	80	"	पंचभूत है या नहीं ?
	42	8	100	"	इस भव में जैसा जीव है, क्या अन्य भव में भी वैसा ही रहता है ?
	14	16	95	350	बंध-मोक्ष है या नहीं ? (v)
	14	16	83	"	देव है या नहीं ?
	9	21	78	300	नारक है या नहीं ?
	12	14	72	"	पुण्य है या नहीं ? (vi)
	10	16	62	"	परलोक है या नहीं ?
	8	16	40	"	निर्वाण है या नहीं ? (vii)

रूप है या दोनों स्वतंत्र है ?

(vii) प्र. बंध-मोक्ष के संशय से इसका क्या विशेष है ?

उ. बंध-मोक्ष का संशय कर्म-जीव के संयोग और विभाग, उभय विषयक है। जबकि यह निर्वाण विषयक संशय मात्र विभाग विषयक है। तथा क्या संसाराभाव ही मोक्ष है या कुछ और है ?

(viii) 14 विद्या = 6 अंग + 4 वेद + मीमांसा + न्यायविस्तर + धर्मशास्त्र + पुराण।

6 अंग = शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष

★ (द्वार गा. 642 पूर्ण) तीर्थंकर-गणधर के निर्गम रूप द्रव्य निर्गम पूर्ण (गा. 145 देखना) ~~निर्गम द्वार पूर्ण~~ (भाग-1 में 'उद्देसे निद्देसे' वाली मूल द्वार गाथा देखना)

अब. अब क्षेत्र द्वार का अवसर है। क्षेत्र के बाद काल द्वार आता है। काल द्रव्य का पर्याय होने से अंतरंग है, क्षेत्र तो आधार मात्र होने से बहिरंग है। 'अंतरंग-बहिरंग में अंतरंग विधि ही बलवान् है' ऐसे न्याय से अवसर प्राप्त क्षेत्र द्वार को छोड़कर कालद्वार कहते हैं।

प्र. तो क्षेत्रद्वार द्वारगाथा में पहले क्यों रखा ?

उ. क्षेत्रद्वार में अल्पवक्तव्य होने से रखा।

६. काल द्वार में 11 निक्षेप हैं। नाम-स्थापना सरल होने से उसे छोड़कर (मूलद्वारगा. 127-8 देखें)

अन्य भेद कहते हैं –

गा. 660 (ज्ञा.गा.) द्रव्य, अद्धा, यथायुष्क, उपक्रम, देश, काल, प्रमाण, वर्ण, भाव – काल के इतने भेद हैं। यहाँ भावकाल से अधिकार है।

काल शब्द सबके साथ जोड़ना।

1. द्रव्यकाल – वर्तनादिलक्षण।
2. अद्धाकाल – $2\frac{1}{2}$ द्वीप में वर्तता समयादिलक्षण।
3. यथायुष्ककाल (आयुष्ककाल) – जीवों के आयुष्य।
4. उपक्रम काल – अभिप्रेत अर्थ को समीप में लाना – 2 प्र. ⓐ सामाचारी ⓑ यथायुष्क
5. देशकाल – देश यानि प्रस्ताव, अवसर, विभाग, पर्याय। उसका काल देशकाल। अर्थात् अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति का अवसर।
6. कालकाल – एक काल शब्द मरणवाचक। मरण का काल।
7. प्रमाणकाल – अद्धाकाल विशेष।
8. वर्णकाल – वर्ण रूप काल।
9. भावकाल – औदयिकादि भाव का काल।

अव. 1. द्रव्यकाल –

गा. 661 देवादि चेतन द्रव्य और द्व्यणुकादि अचेतन द्रव्यों की स्थिति, वही द्रव्य काल।

वह 4 प्र. की –	जीव	अजीव
गा. 662 सादिसांत	देवादि गति के जीव	द्विप्रदेशादि स्कंध
सादि अनंत	सिद्ध	अनागत काल
अनादि सांत	कुछ भव्य	अतीत काल
अनादि अनंत	अभव्य	धर्म-अधर्म-आकाश द्रव्य

अव. 2. अद्धाकाल –

गा. 663 परमनिकृष्ट = 1 समय। जघन्य युक्त असंख्य समय = आवलिका। 2 घड़ी = मुहूर्त। 4 प्रहर = दिवस। 8 प्रहर = अहोरात्र। 15 दिन = पक्ष। मास, वर्ष, युग, पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, परावर्त इत्यादि। परावर्त के भेद पंचसंग्रह टीका से जानना।

अव. 3. आयुष्क काल –

गा. 664 जीवों का आयुष्य ।

अव. 4. उपक्रम काल–

गा. 665 उपक्रम काल 2प्र. –

(a) सामाचारी उपक्रमकाल– शिष्टों द्वारा आचरित क्रियाकलाप = समाचार
स्वार्थ में ष्यण् सामाचार्यः, स्त्री विवक्षा में ङी
सामाचार्य + ङी अतः से य का लोप, व्यंजनादि इतीहित से 'य्' लोप
सामाचारी।
ऊपर के श्रुत से सामाचारी को यहाँ लाना, वह उपक्रम।

(b) यथायुष्क उपक्रम काल– दीर्घकाल में भोग्य वस्तु को स्वल्पकाल में खपाना।

उपक्रम काल

सामाचारी	यथायुष्क
ओघ	(7प्र. का नि. 724 में)
दशविध	
पदविभाग	

(a) सामाचारी – 3प्र.

(a1) ओघसामाचारी – सामान्य से संक्षेप कथन रूप। यह सामाचारी 9वें पूर्व के आचार नामक तीसरी वस्तु के 'ओघ' नामक 20वें प्राभृत से निकाली गई। नूतन दीक्षितों को इतने और इतने श्रुतज्ञान की शक्ति से रहित जीवों को ध्यान में रखकर, आयु वि. की हानि की अपेक्षा से यह पास में लाई गई। बहुत बड़ी होने से पृथक् ग्रंथ रूप लिखी गई।

(a2) दशविध सामाचारी – उत्तराध्ययन के 26वें अध्ययन से नूतन दीक्षितों के लिए निकाली गई। यहाँ कही जाएगी।

(a3) पदविभाग सामाचारी – छेद सूत्र रूप, 9वां पूर्व से निकाली गई।

टिप्पणक → गणधरों के अगारपर्याय कहती निर्युक्ति गा.650 - 'तेवण्णं पंचसट्ठी'-
मंडिक - 53 साल, मौर्यपुत्र - 65 साल। 'त्रिपञ्चाशत् पञ्चषष्टिः' (हरिभद्रीय टीका)

प्र. मंडिक बड़े थे और मौर्यपुत्र छोटे थे। दोनों की दीक्षा एक ही दिन हुई। किंतु गृहस्थ पर्याय क्रमशः 53 और 65 साल कहा, तो विरोध क्यों नहीं है?
उ. तत्त्वमिह केवलिनो विदन्ति।
1. यदि गणधर के नामों की प्रतिपादक गाथा में व्यत्यय करें,
2. यदि गृहस्थप. और सर्वायु प्रतिपादक गाथा में व्यत्यय करें अथवा
3. 'धनदेवे पञ्चत्वमुपागते मौर्येण गृहे धृता' इन वृत्ति के अक्षरों का 'मौर्ये पञ्चत्वमुपागते धनदेवेन धृता' इस प्रकार व्यत्यय करें
तो सब सुस्थ होगा किंतु विशिष्ट संप्रदाय का अभाव होने से ऐसा नहीं कर सकते।

★ मलयगिरि म. ने 53, 65 की जगह 65, 53 ही लिखा है।

मलयगिरीय टीका अव. दशविध सामाचारी —
गा. 666-7 इच्छाकार, मिच्छाकार, तथाकार, आवश्यकी, नैषेधिकी, आपृच्छा, प्रतिपृच्छा, छंदना, निमंत्रणा, उपसंपदा।

अव. इच्छाकार सामाचारी - (द्वार गाथा)
गा. 668 (द्वार) यदि कारण उत्पन्न होने पर दूसरे को प्रार्थना करे अथवा उसका कार्य कोई करे तो उसमें भी इच्छाकार करनी, बलाभियोग कल्पता नहीं है।
★ 'यदि'- साधु का कारण बिना अभ्यर्थना नहीं करना चाहिए, इसलिए यदि शब्द लिखा
★ कोई'- कोई प्रार्थना बिना भी दूसरे का काम करने वाले विरले ही होते हैं, अतः कोई शब्द लिखा।
★ 'तु'- अपवाद से बलाभियोग भी कल्पता है।

अव. 'यदि' शब्द का अर्थ-
गा. 669 साधु को अनिगूहित बल-वीर्य वाला बनना चाहिए इसलिए कारण न होने पर साधु

को अभ्यर्थना नहीं करना चाहिए।

★ बल = शारीरिक शक्ति विशेष। वीर्य = आंतर शक्ति विशेष।

अव. 'कारण होने पर ही साधु को अभ्यर्थना कल्पती है'। वे कारण कहते हैं -
गा. 670
1. यदि उसे कार्य आता न हो।
2. यदि वह कार्य करने में समर्थ न हो।
3. यदि वह गुरु/ग्लानादि के कार्य में प्रवृत्त हो।

अव. अभ्यर्थना किसे करना (अभ्यर्थना का विषय) और अभ्यर्थना का स्वरूप -
गा. 671 रत्न 2 प्र. → मरकतवज्र इंद्रनील वैडूर्य वि. द्रव्य रत्न, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र भाव रत्न। भाव रत्नों से जो अधिक हैं, वह रत्नाधिक। रत्नाधिक को छोड़कर शेष साधुओं को अभ्यर्थना करना चाहिए।

प्र. मरकतादि द्रव्य रत्न क्यों?
उ. क्योंकि सुख की अपेक्षा से उनमें अनैकान्तिकता और अनात्यंतिकता है।

'मेरा यह कार्य आप इच्छा से करो' ऐसे अभ्यर्थना करना।

अव. 'स्वयं का कार्य किसी से कराना हो तो उपर्युक्त विधि कही गई। किसी दूसरे का कार्य स्वयं को करना हो तो उसकी विधि - कहते हैं'। अन्य का कार्य करने का कारण -
गा. 672-6 यदि वे अन्य कोई बड़े कार्य में प्रवृत्त हो तो निर्जरा के अर्थी साधु को उसे कहना चाहिए - कि 'आपका यह कार्य मैं मेरी इच्छा पूर्वक करूँ?' तब कारापक साधु को उसे पुनः इच्छाकार करना चाहिए।

प्र. जब कोई साधु स्वयं की इच्छा से कार्य करने आया है तो कारापक साधु को पुनः इच्छाकार का प्रयोग क्यों करना?
उ. क्योंकि यह साधुओं की मर्यादा है।

अव. 'बलाभियोग कल्पता नहीं है' इस पद की व्याख्या -

गा. 677 'आज्ञा = 'आपको यह करना ही है' इस प्रकार।
बलाभियोग = आज्ञा के बाद भी नहीं करते हुए को बल से कार्य में जोड़ना।
ये दोनों साधु को नहीं कल्पते हैं। यह उत्सर्ग है।
अपवाद से तो दुर्विनीत में आज्ञा-बलाभियोग भी कल्पते हैं। उत्सर्ग से तो दुर्विनीत के साथ संवास ही नहीं कल्पता है। किंतु स्वजनादि से प्रतिबद्ध होने के कारण छोड़ने योग्य न हो तो पहले इच्छाकार, फिर आज्ञा, फिर बलाभियोग से जोड़े।

अव. दृष्टांत -

गा. 678-9 बाह्लीक अश्व स्वयं ही लगाम कर लेता है, जिससे राजा उसे अधिक घासादि डलवाता है।
मगधादि देश में उत्पन्न घोड़े को तैयार किया गया × उसने माता को पूछा - ऐसा क्यों किया? × माता - कल तुझे वहन कराएँगे, तू स्वयं लगाम ग्रहण करना × उसने ऐसा ही किया × राजा ने घास वि. डलवाया × दूसरे दिन माता के कहने से उसने स्वयं लगाम ग्रहण नहीं की × उसे मारकर भी लगाम लगाई और बाद में भी भूखा रखा ××
इसी प्रकार शिष्य भी इच्छा से न प्रवर्ते तो गुरु बल से प्रवर्ताए।

अव. प्र. तो भी अनभ्यर्थित को इच्छाकार करना योग्य नहीं है? - उ. -

गा. 680 अभ्यर्थना में ब्राह्मण दृष्टांत - एक साधु के पास वेयावच्च की शक्ति थी किंतु वह
भा. 137 करता नहीं था × गुरु के प्रेरणा करने पर वह बोला - कोई मुझे प्रार्थना नहीं करता तो मैं सामने से क्यों जाऊँ? × गुरु - तू तो ब्राह्मण की तरह निर्जरा से चूक जाएगा ×
एक दरिद्र ब्राह्मण था × वह ज्ञानमद से कार्तिक पूनम को राजा प्रजा को दान देता था, तब वह नहीं गया × पत्नी ने कहा तो वह बोला - एक तो शूद्रों के बीच मुझे खड़े रहना और दूसरा सामने से माँगने जाना, इससे अच्छा तो जिसे पुण्य चाहिए, वह मुझे आकर देगा × ऐसे वह पूरा जीवन दरिद्र रहा × तू भी इसी प्रकार अभ्यर्थना की इच्छा से निर्जरा चूक जाएगा ×
शिष्य - 'तो आप स्वयं क्यों नहीं करते? × गुरु - तू तो वानर जैसा है, जिसने सुघरी के कहने पर उसका ही घर तोड़ दिया; मेरे तो निर्जरा के अन्य रास्ते हैं जिनसे मुझे बहुत निर्जरा होती है, यदि मैं वेयावच्च करूँ तो उस लाभ से चूक जाऊँगा, वणिक की तरह -

दो वणिक × बारिश में पहला वणिक 'पैसे लगेंगे' ऐसा सोचकर स्वयं आषाढ़ी पूनम को घर का छापरा बनाने बैठा × दूसरा वणिक् थोड़े पैसे देकर स्वयं व्यापार करने लगा × उस दिन उसे Double लाभ हुआ ×× इस प्रकार मैं स्वयं सेवा करूँ तो चिंतन बिना सूत्रार्थ हानि होगी, जिससे गच्छ की सारणा नहीं होगी

*

★ आचार्य को स्वयं वैयावच्च करने से दोष -

1. चिंतन-मनन बिना सूत्रार्थ का नाश। जिससे गच्छ की सारणा नहीं होगी
2. प्राघूर्णकादि का कोई स्वागत नहीं करे, संभाले नहीं।
3. बाल-वृद्ध-ग्लान-तपस्वी-शैक्षक की चिंता कोई नहीं करे।
4. राजा-मंत्री वि. ऋद्धिमान् या कोई बौद्धारी वारी आए तथा जाने कि आचार्य पानी लेने गए वि. तो प्रवचन लाघव 'इनके पास ऋद्धि नहीं थी इसलिए दीक्षित हुए'।
5. यदि अनृद्धिमान् दीक्षादि के प्रयोजन से आए और जाने कि आचार्य पानी लेने गए वि. तो उसे भी विपरिणाम हो। (टिप्पणक)

अत. कोई इच्छाकार करे, फिर लब्धि के अभाव से उसे वस्तु न मिले तो इच्छाकार निर्जरा वाला नहीं होगा? -

गा. 681 संयम व्यापार में उद्यत, इह-परलोक प्रशंसा से रहित कार्य करने की इच्छा वाले जीव को लब्धि न हो सके, यदि वो अदीनमन वाले हो तो निर्जरा ही होती है।

अव. मिथ्याकार सामाचारी -

गा. 682 समिति-गुप्ति रूप संयम योग में जो कुछ वितथ आचरण हो, उसे मिथ्या जानकर 'मिच्छामि दुक्कडं' देना।

अव. उत्सर्ग और अपवाद -

गा. 683 'मिच्छामि दुक्कडं' जानबूझकर किए हुए दोष और बार-बार किए हुए दोषों को दूर करने में समर्थ नहीं है, मात्र भूल से हुए दोष को दूर करता है। अतः उत्सर्ग से कोई वितथाचरण नहीं करना चाहिए, यदि भूल से वितथ हो तो मिथ्याकार करना चाहिए।

अव. कैसे साधु का 'मिथ्या दुष्कृत' सच्चा लेता है -

गा. 684 जो 'मिच्छामि दुक्कडं' के बाद पुनः वितथाचरण का मन-वचन-काया और कृत-कारित-अनुमत से त्याग करे।

अव. किसका 'मिच्छामि दुक्कडं' सच्चा नहीं-

गा. 685 जो गुरु को रंजित करने के लिए 'मिच्छामि दुक्कडं' दे, मन से तो पाप में निवृत्त न हो, उसे मृषावाद और माया दोष लगते हैं।

प्र. यह कैसे पता चले कि वह मन से निवृत्त नहीं है?

उ. पुनः पुनः वितथ सेवन से।

अव. 'मिच्छामि दुक्कडं' पद का अर्थ-

गा. 686-7 मि = मृदु और मार्दव अर्थ में। मृदु = कायनम्रता, मार्दव = भावनम्रता
छा = छादन यानि रोकना। असंयम को रोकना।
मि = मर्यादा, चारित्ररूप मर्यादा में मैं रहूँगा।
दु = दुष्कृत करने वाले स्वयं की मैं निंदा करता हूँ।
क्क = 'मेरे द्वारा पाप किया गया' इस प्रकार स्वीकारना।
ड = (डेव धातु लांघने अर्थ में) मैं किए हुए पाप का अतिक्रम, लंघन करता हूँ।

प्र. प्रत्येक अक्षर में अर्थ कैसे होता है? पद-वाक्य में ही अर्थ देखा जाता है।

उ. जैसे वाक्य का एक देश होने से वर्ण पद में अर्थ है, वैसे पद का एक देश होने से वर्ण में भी है। समुदाय में है तो प्रत्येक में भी वह होगा ही, रेती में तेल का दृष्टांत।

अव. तथाकार समाचारी - तथाकार किसे करना -

गा. 688 जो कल्पाकल्प में संपूर्ण निश्चित है, जो ६ महाव्रतों में स्थिर है, जो संयम-तप से युक्त है, उसे विकल्प बिना तथाकार करना।

→ कल्प = आचार, अकल्प = चरकादि दीक्षा।
निश्चित = जिन्हें संपूर्ण ज्ञान हो।

अव. तथाकार का विषय -

गा.689 वाचना = सूत्रदान में 2. गुरु कुछ सामाचारी वि. का उपदेश दे, तब
1. सूत्र के अर्थ के व्याख्यान में तथाकार करना चाहिए।
3. प्रतिश्रवणा = गुरु जब प्रश्न का उत्तर देते हैं, तब तथाकार करना चाहिए।
4.

: आप जो कह रहे हैं, वह वैसा ही है, अवितथ है' इस प्रकार तथाकार।

अव. इच्छा-मिच्छा-तथाकार का फल -
गा.690 सुगति दुर्लभ नहीं होती।

अव. आवश्यकी- नैषेधिकी सामाचारी → (अवतरणिका गाथा-)
गा.691 हे आचार्य! बाहर निकलते हुए 'आवस्सही' और अंदर आते हुए 'निसीहि'
जो होती है, वह मैं जानने की इच्छा करता हूँ।

अव. गुरु का उत्तर -
गा.692 'आवस्सही और निसीहि' शब्दरूप से भिन्न हैं, अर्थ तो एक ही है क्योंकि
निसीहि बोलने वाला भी आवश्यक व्यापार का उल्लंघन नहीं करता।
प्र. तो भेद क्यों किया?
उ. क्योंकि निसीहि स्थिति क्रिया रूप और आवस्सही गमन क्रिया रूप है। अतः क्रिया-
भेद से दोनों में भेद कहा है।

अव. 'बाहर निकलते साधु को आवस्सही होती है' ऐसा कहा।
प्र. साधु को फिरना उचित है या एक जगह रहना?
उ. रहना।
प्र. कैसे? –
गा.693 समता से शांत और एकाग्र रहे हुए साधु को कर्मबंध नहीं होता और
स्वाध्याय-ध्यानादि गुण होते हैं, अतः अवस्थान ही श्रेयस्कर है।
किंतु गुरु-ग्लानादि कारण होने पर गमन करना ही चाहिए। यदि कारण होने
पर जाए नहीं तो दोष होते हैं।
अव. क्या कारण से जाते हुए सभी साधु को आवश्यकी होती है? नहीं। तो किसे होती

है?-

गा.694 1. बाहर जाने पर मन-वचन-काया से गुप्त साधु को आवश्यकी।
2. बाहर न जाने पर जो प्रतिक्रमणादि सर्व आवश्यक क्रियाओं को निरतिचार रूप करता है, उसे आवश्यकी।

★ एकाग्र = एकं अग्रं-आलम्बनं अस्य इति एकाग्रः।

अब. नैषेधिकी सामाचारी-

गा.695-6 जहाँ शय्या अथवा स्थान को साधु करता है, वहाँ निसीहि होती है क्योंकि वहीं साधु निषिद्ध होता है।
→ शय्या = शेरते अस्याम्, जहाँ सोते हों, वह शयनस्थान।
→ स्थान = काउसग्ग। चशब्द से वीरासनादि सभी आसन लेना।
→ 'शय्यां स्थानं च यत्र चेतयते'-
चेतयते = अनुभव रूप जाने अथवा चेतयते = करना 'धातूनामनेकार्थत्वात्'
→ प्रतिक्रमणादि सभी आवश्यक करने के बाद गुरु की अनुज्ञा से ऐसे स्थान में निसीहि होती है।
→ वहीं साधु पाप से निषिद्ध होता है।

अब. उपसंहार (भाष्यकार-)-

भा.133 (हरि. में भा.120) इस प्रकार आवस्सही और निसीहि, दोनों अवश्य कर्तव्यव्यापार को उल्लंघते नहीं है, अतः दोनों एक ही है किंतु आगमन (स्थिति) रूप और गमन रूप क्रिया से शब्द में भेद है।

निसीहि बोलने का भावार्थ- नैषेधिकी शय्या में प्रवेशता साधु नैषेधिक शरीर से अंदर आता है, तब निसीहि बोलता है। (स्पष्टता-टिप्पणक में)

टिप्पणक → जिस शय्या-वसति में अतिचार वाले साधुओं को प्रवेश का निषेध किया जाए, बस वह शय्या नैषेधिकी कही जाती है। ~~जिसकी~~ जो आत्मा सभी पापों/अतिचारों से निषिद्ध हो, उस आत्मा संबंधी शरीर को भी नैषेधिकी कहा जाता है।

ऐसे शय्या में प्रवेशतां साधु निसीहि बोलता है, उसका भावार्थ यह है कि – वह शेष है साधुओं को बोलता है कि मैं नैषेधिक शरीर से नैषेधिकी शय्या में प्रवेश करता हूँ अतः आप सबके द्वारा संवृत शरीर वाला होना चाहिए।

प्रत्यनीकीय

टीका अव. भाष्यकार ही इसी अर्थ को स्पष्ट करते हैं –

भा. 134 जो मूल-उत्तरगुणों के अतिचारों से निषिद्ध होता है, उसे ही भाव से निसीहि होती है। अनिषिद्ध आत्मा को भाव से निसीहि नहीं होती, मात्र शब्द होता है।

भा. 135-6 जो आवश्यक में जुड़ा होता है, वह अवश्य अतिचारों से निषिद्ध होता है अथवा जो निषिद्ध होता है, वह अवश्य आवश्यक से युक्त होता है।
इस प्रकार एकार्थता है।

अव. आपृच्छा, प्रतिपृच्छा, छंदना, निमंत्रणा सामाचारी –

भा. 697 आपृच्छा = करने के लिए इच्छित कार्य में प्रवर्तते शिष्य द्वारा गुरु को पूछना कि 'मैं यह करूँ?'।
प्रतिपृच्छा = पूर्व में निषिद्ध कार्य का प्रयोजन उत्पन्न होने पर पुनः पूछना।
अथवा
पूर्व में नियुक्त शिष्य द्वारा गुरु को कार्य करते समय पुनः पूछना।
छंदना = पूर्व में जो अशनादि लाए हो उससे साधुओं को छंदना करे 'आपको जो उपयोगी हो, उसे इच्छाकार से ग्रहण करो'।
निमंत्रणा = अशनादि न लाए हो तब निमंत्रणा करे कि 'मैं आपके लिए अशनादि लाऊँ?'

अव. उपसंपद् – 2 प्र. गृहस्थ की और साधु की। यहाँ साधु की उपसंपदा कहते हैं –

भा. 698-9 उपसंपदा 3 प्र. (i) ज्ञान (ii) दर्शन (iii) चारित्र।
ज्ञान और दर्शन संबंधी उपसंपदा 3-3 प्र., चारित्र संबंधी 2 प्र.।

उपसंपदा

गृहस्थ (आगे कहेंगे) साधु

ज्ञान दर्शन चारित्र

वर्तना संधना ग्रहण × सूत्र अर्थ उभय वैयावृत्य क्षपण

अव. उपसंपदा किसे किसके पास लेना ?—

गा. 700 चतुर्भंगी 1. गुरु द्वारा संदिष्ट शिष्य संदिष्ट आचार्य के पास ले।
2. संदिष्ट असंदिष्ट
3. असंदिष्ट संदिष्ट
4. असंदिष्ट असंदिष्ट
प्रथम भंगा शुद्ध। अपवाद से अन्य भंगे भी शुद्ध।

अव. वर्तनादि का स्वरूप—

गा. 701-2 वर्तना = पूर्व गृहीत सूत्र का स्थिरीकरण।
संघना = सूत्र का कोई प्रदेश नष्ट हुआ हो तो उसे मिलाना।
ग्रहण = पहले से नए सूत्र का ग्रहण।
अर्थ और उभय पक्ष में भी यह समझना।

अव. व्याख्यान विधि —

गा. 703 (द्वार) प्रमार्जना, निषद्या, अक्ष, कृतिकर्म, काउसग्ग, ज्येष्ठ को वंदन।
यहाँ ज्येष्ठ पर्याय से नहीं; किंतु ज्ञान से लेना; जो वाचना देता हो, उसे ज्येष्ठ जानना।

गा. 704 जहाँ वाचना लेना हो, उस स्थान की प्रमार्जना करे। फिर 2 निषद्या (आसन) पाथरे, एक गुरु का, एक अक्ष का। फिर अक्ष की स्थापना करे क्योंकि समवसरण बिना कभी भी वाचना नहीं करना चाहिए।

गा. 705 (कृतिकर्म द्वार—) गुरु के लिए 2 मात्रक रखे — 1. कफ का, 2. मात्रु का। क्योंकि वाचना के बीच में यदि गुरु उठे तो पलिमंथ दोष। यदि गुरु न उठे, रोककर रखे तो आत्म विराधनादि दोष।

प्र. गुरु वाचना के पहले मात्रु जाकर ही आए तो बीच में मात्रु की शंका कैसे ?
उ. यदि रोग के कारण मात्रु जाना पड़े तो मात्रक रखे।
जितने वाचना सुने सभी को द्वादशावर्त वंदन। करे।

गा. 706 (काउसग्ग द्वारे) 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' अतः अनुयोग के प्रारंभ में सर्व श्रोताओं को काउसग्ग करना। काउसग्ग पारकर गुरु के एकदम पास भी नहीं, दूर भी नहीं बैठे।
काउसग्ग पारकर पुनः वंदन कर बैठे।

गा.707-8 निद्रा-विकथा रहित, मन-वचन-काय से गुप्त, हाथ जोड़कर, भक्ति-बहुमान पूर्वक, उपयोग पूर्वक, गुरु के वचन की अभिकांक्षा करते हुए, हर्ष सहित, हर्ष से विस्मित मुख वाले शिष्यों द्वारा व्याख्या सुनी जानी चाहिए।

→ भक्ति = यथोचित बाह्य प्रतिपत्ति। बहुमान = आंतर प्रीतिविशेष।

गा.709 इस प्रकार सुनते शिष्य गुरुभक्ति से ही जल्दी सूत्रार्थ के पार को प्राप्त करते हैं।

गा.710 ~~[illegible]~~ (ज्येष्ठ को वंदन –) वाचना पूर्ण होने पर मात्र वि. पढ़कर ज्येष्ठ को वंदन करे।
[ज्येष्ठ = गुरु की वाचना के बाद जो सबको पाठ कराए) → ~~टि~~ टिप्पणक]
अन्य आचार्य – वाचना के पहले और गुरु के बाद ही ज्येष्ठ को वंदन करना।

प्रव. अनुभाषक ऐसे ज्येष्ठ को वंदन करने में दोष और उनका निराकरण –

गा.711 (पूर्वपक्ष –) 1. यदि ज्येष्ठ धारणाशक्ति रहित हो अथवा व्याख्यान लब्धि हीन हो तो वंदन निरर्थक होंगे? क्योंकि उन वंदन का फल तो मिलेगा ही नहीं?

गा.712 2. यदि ज्येष्ठ रत्नाधिक का वंदन लेगा तो उसे आशातना लगेगी?

गा.713 (उत्तरपक्ष –) 1. यहाँ ज्येष्ठ उसे ही बनाना जो पर्याय में भले ही छोटा हो किंतु धारणाशक्ति में पटु और व्याख्यान लब्धि वाला हो।

गा.714 2. वंदन रत्नाधिक को करना चाहिए। यहाँ व्याख्यान रूप गुण से वह छोटा भी रत्नाधिक ही है अतः उसे कोई आशातना नहीं होती।

अव. प्रसंग से वंदन के विषय में निश्चय-व्यवहार मत बताते हैं –

गा.715-6 निश्चय नय से वय-पर्यायादि प्रमाण नहीं है, मात्र भाव ही प्रमाण है। भाव तो अतिशय ज्ञानी बिना जान नहीं सकते अतः वंदन व्यवहार का लोप होगा।
यह व्यवस्था दूरे नहीं व्यवहार से वंदन किए जाते हैं, जो पहले दीक्षित हुआ और अतिचार रहित है, उसे वंदन किया जाता है।

भा.137 प्र. सम्यक् भाव न जानने पर वंदन क्यों किया जाता है? –
उ. क्योंकि व्यवहार भी बलवान् है। केवली भी जब तक अज्ञात होते हैं, तब तक छद्मस्थ ऐसे गुरु वि. को व्यवहार की प्रधानता होने के कारण वंदन करते हैं।
प्र. ऐसा होने पर तो ज्येष्ठ को रत्नाधिक वंदन करे तो अवश्य आशातना होगी? –
उ. 1. व्याख्यान के अधिकार में वंदन जिनोक्त होने से आशातना नहीं होगी।
2. वंदन नहीं करने पर सूत्र की आशातना का दोष बड़ा होगा।

गा. 717 इसलिए वंदन करना चाहिए।

ज्ञानोपसंपदा की विधि कही। दर्शन उपसंपदा की विधि भी समान है। मात्र दर्शन से दर्शन प्रभावक शास्त्र लेना।

अब. चारित्र उपसंपदा –

गा. 718 प्र. वैयावृत्त्य और क्षपण विषयक उपसंपदा क्यों की जाती है? स्वगच्छ में ही क्यों नहीं करते?

उ. स्वगच्छ में सीदन आदि दोष होने से अन्य गच्छ में जाते हैं।
आदि शब्द से 'अन्यभावादि' दोष।
[स्व गच्छ में अन्य वैयावच्च करने वाले हो, वह अन्य भाव – टिप्पणक]

गा. 719 कोई आचार्य का वैयावृत्त्यकरत्व स्वीकारता है। वह काल से इत्वर और यावत्कथिक हो सकता है। आचार्य का वैयावृत्त्य-कर भी हो सकता है या नहीं भी।
यदि कोई वैयावृत्त्यकर नहीं है तो आगंतुक स्वीकार्य है।
यदि वैया. हो तो 4 भांगे –
(i) आगंतुक और वास्तव्य दोनों यावत्कथिक हो, तो जो लब्धि युक्त है, उसे आचार्य रखे, बाकी को उपाध्यायादि को दे।
यदि दोनों लब्धिमान हो तो वास्तव्य को रखे, आगंतुक उपाध्यायादि को दे।
यदि आगंतुक न माने तो वास्तव्य को समझाकर उपाध्यायादि को दे।
यदि वास्तव्य उपाध्यायादि की वैयावच्च के लिए न माने तो आगंतुक को विसर्जन करे।
(ii) यदि आगंतुक इत्वर कालिक और वास्तव्य यावत्कथिक हो तो इस प्रकार ही भेद करना।
विशेष – वास्तव्य की इच्छा न होने पर भी प्रीति से उसे उपाध्यायादि को दे। किंतु यदि सर्वथा न इच्छे तो आगंतुक को विसर्जन करे।
(iii) आगंतुक यावत्कथिक और वास्तव्य इत्वर हो तो वास्तव्य उपाध्यायादि को दे।
(iv) दोनों इत्वर हो तो, प्रथम भांगे की तरह विकल्प करना।
वैयावृत्त्य उपसंपदा पूर्ण। अब क्षपणोपसंपदा –
कोई तप करने के लिए उपसंपदा लेता है। वह क्षपक 2 प्र. – इत्वर और यावत्कथिक।

क्षपक

इत्वर
(i) विकृष्ट क्षपक → अट्ठमादि।
(ii) अविकृष्ट क्षपक → उपवास-छट्ठ।

यावत्कथिक
↓
बाद में अनशन करने वाला

अविकृष्ट क्षपक को आचार्य पूछे - आप पारणे में कैसे होंगे? क्षपक - ग्लान, आचार्य - तो तप रहने दो स्वाध्याय और सेवा में यत्न करो। (अन्यमत - आचार्य ग्लान होने पर भी स्वीकारे।
यदि आगंतुक विकृष्ट क्षपक या यावत्कथिक हो तो आचार्य स्वीकारे।

तीनों प्र. के तपस्वी को स्वीकारने से पहले आचार्य गच्छ को पूछे। इसमें 3 विकल्प हो सकते हैं -
(i) गच्छ कहे - हमें एक क्षपक है ही। इनका तप पूरा होने के बाद इनकी सेवा करेंगे, तो आचार्य क्षपक को धारण करे और कहे कि इनका तप पूर्ण होने पर आप तप करना।
(ii) गच्छ नहीं माने तो क्षपक का विसर्जन करे।
(iii) गच्छ स्वीकारे तो क्षपक को स्वीकारे।

स्वीकारने के बाद यदि शिष्य कुमार या अनाभोग से सेवा न करे, तो आचार्य इन्हें प्रेरणा करे।

गा. 720 आगंतुक साधु उपसंपदा के बाद यदि प्रयोजन में न जुड़े, प्रमाद करे तो आचार्य उसे प्रेरणा करे। वह अविनीत हो तो उसका त्याग करे।
आगंतुक इत्वरकालिक हो तो उसका प्रयोजन पूर्ण होने पर आचार्य याद कराए। इसमें 3 विकल्प -
(i) आगे भी यदि वह इच्छे तो उसे स्वीकारे।
(ii) यदि वह न इच्छे तो उसे त्यागे।
(iii) यदि उसके गुरु की संमति न हो तो उसे त्यागे।

उप. - साधु की उपसंपदा पूर्ण। गृहस्थ उपसंपद् -
गा. 721 साधु को थोड़े काल के लिए भी अदत्त अवग्रह में रहना नहीं कल्पता। भिक्षाटन में यदि व्याघात होने से कहीं कुछ देर खड़ा रहना हो तो भी अनुज्ञा लेना चाहिए। अरबी वि. में भी कोई हो तो अनुज्ञा लेना नहीं तो 'अणुजाणह जस्सुग्गहो' कहना चाहिए। 10 सामाचारी पूर्ण।

अव. सामाचारी का फल-

गा. 723 एअं सामायारिं जुंजंता चरणकरणमाउत्ता। साहू खवंति कम्मं अणेगभवसंचिअमणंतं॥

→ चरण-करण = चरण सित्तरि और करणसित्तरि।

वय[5] समणधम्म[10] संजम[17] वेयावच्चं[10] च बंभगुत्तीओ[9]।

नाणाइतियं[3] तव[12] कोहनिग्गहा[4] चेव चरणं तु॥

पिंडविसोही[4] समिई[5] भावण[12] पडिमा[12] य इंदियनिरोहो[5]।

पडिलेहण[25] गुत्तीओ[3] अभिग्गहा[4] चेव करणं तु॥

★ अब पदविभागसामाचारी का अवसर है (Pg. No. 17, गा. 665)। वह छेदसूत्र से जानना। इस प्रकार सामाचारी[4(a)] उपक्रम काल पूर्ण हुआ। (द्वारगा. 660, Pg. 16)

अव. 4(b) यथायुष्क उपक्रम काल, 7प्र. -

गा. 724 (प्रतिद्वार) अध्यवसाय, निमित्त, आहार, वेदना, पराघात, स्पर्श, प्राणापाननिरोध - 7प्र. से आयु क्षय होता है।

★ यथायुष्क उपक्रम यानि आयु का उपक्रम करना, उसे जल्दी समाप्त करना। उसके 7 कारण हैं।

(i) अध्यवसान 3प्र. - राग, स्नेह, भय।

(ii) निमित्त - दंडादि।

(iii) आहार - प्रचुर होने पर।

(iv) वेदना - आँख वि. की वेदना में।

(v) पराघात - गड्ढे में गिरने वि. से होने वाला आघात।

(vi) स्पर्श - सर्प वि. का।

(vii) प्राणापान निरोध - श्वास रोकना।

(i) राग अध्यवसान - एक गोपाल की गाय चोरी हुई x आरक्षकों ने वापस लाए x गाँव में एक तरुण प्यासा प्रविष्ट हुआ x एक तरुणी ने पानी दिया x उसके हाथ से बने पात्र में वह डालती है x वह पीता है x उसके मना करने पर भी वह रुकती नहीं है तो वह उठकर चला जाता है x वह तरुणी देखती रहती है x अदृश्य होने पर वहीं खड़े-खड़े अतिशय राग से मर जाती है।

स्नेह अध्यवसान - एक वणिक् की तरुण पत्नी x परस्पर तीव्र स्नेह x व्यापार के लिए बाहर गया x मित्र ने कहा - हम देखें कि सच्चा राग है या नहीं ? x उसे एक दिन घर नहीं आने दिया। x पत्नी

को कहा कि वह मर गया x पत्नी- सही में x मित्र- हाँ, एकदम सच x वह मर गई x यह बात वणिक् को कही तो वह भी मर गया।

9. राग और स्नेह में क्या अंतर? उ. राग रूपादि आक्षेप से उत्पन्न होता है, स्नेह सामान्य से जीवों पर होता है।
[पुत्रादिविषयक स्नेह होता है - हरिभद्रीय टीका]

भय अध्यवसान - द्वारावती x 12 यो. लंबी, 9 यो. चौड़ी x उत्तर-पूर्व में रैवत पर्वत x नंदनवन उद्यान x में सुरप्रिय यक्षायतन x कृष्ण वासुदेव x समुद्रविजयादि 10 दशार्ह x बलदेवादि 5 महावीर x 16000 राजा, प्रद्युम्नादि 2½(?) करोड़ कुमार, शंबादि 60 ह. दुर्दांत, वीरसेनादि 21 ह. वीर, महासेनादि 56 ह. बलवक, रुक्मिणी वि. 32 ह. पत्नी, अनंगसेनादि अनेक ह. गणिका, अन्य भी बहुत ईश्वर - तलवर - सार्थवाहादि रहते x भ. नेमिनाथ के अंतेवासी 6 भाई, 14 पूर्वी, 4 ज्ञान वाले, एकांत सदृश, नीलोत्पल जैसे प्रकाश वाले, वक्ष पर श्रीवत्स के चिह्न वाले, 32 लक्षण वाले, दीक्षा से ही 6 छट्ठ करने वाले थे x वे एकदा देवकी के घर 3 ग्रुप में गए x देवकी ने सोचा- क्यों इस द्वारावती में साधुओं को गोचरी नहीं मिलती? उसने पूछा x मुनि- वे हम नहीं थे x उसने सोचा- पोलासपुर में मुझे अतिमुक्तक केवली ने कहा था कि तू सदृश 8 पुत्र की माता होगी, भरत में तेरे जैसी कोई महिला नहीं होगी, यह बात मिथ्या नहीं होगी, किंतु यह तो प्रत्यक्ष अन्य के पुत्र हैं x अत: जाकर नेमिनाथ भ. को पूछने पर भ. -- भद्दिलपुर में नाग सेठ की सुलसा पत्नी निंदू (मृतपुत्र को जन्म देने वाली) थी, उसने हरिणेगमैषी की आराधना की, उसने तेरे साथ ही पुत्र को जन्म दिया तब देव ने पुत्र का संहरण किया, अत: ये 6 तेरे पुत्र हैं x वह वसति में जाकर पुत्र मुनि को वंदन करती है x उसने सोचा - 7 पुत्र हुए किंतु एक भी पुत्र को पाला नहीं x अतः श्री कृष्ण आया x उसके पूछने पर कहा x कृष्ण ने अट्ठम से हरिणेगमैषी को आराधा x देवकी ने गज स्वप्न देखकर गर्भ धारण किया x 9 मास 7½ दिन पर जन्म x गजसुकुमाल नाम x सोमिल ब्राह्मण की सोमश्री पत्नी की पुत्री सोमा मार्ग में खेल रही थी x नेमिनाथ भ. के समवसरण में जाते कृष्ण द्वारा देखी x कौटुंबिक पुरुषों से अंतःपुर में लाया x गजसु. समवसरण से आकर माता-पिता की आज्ञा लेकर दीक्षा ली x भ. की आज्ञा लेकर श्मशान में एकरात्रिक प्रतिमा स्वीकारी x सोमिल समिध् के लिए द्वारावती के बाहर गया था x आते हुए गजसुकुमाल को देखकर गुस्से से सरोवर की पालि बांधी, अंगारे डाले x भागकर घर गया x गजसु. शुभ ध्यान से केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्ध हुए x पास में रहे वाणव्यंतरों ने जल-पुष्प वृष्टि की x दूसरे दिन कृष्ण समवसरण के लिए निकले x रास्ते में एक वृद्ध ईंट घर ले जा रहा था x दया से कृष्ण ने एक ईंट घर रखी x पीछे हजारों पुरुष ने 1-1 ईंट रखी x समवसरण गए x भ. ने पूछने पर कहा - गजसु. ने स्वयं का अर्थ साध लिया x कैसे x भ. ने पूरी

बात कही x कृष्ण - किसने अंगारे डाले ? x भ. - जैसे तूने वृद्ध को ईट रखने में सहाय की, वैसे उसने भी गजसु. को निर्जरा में सहाय की, अतः गुस्सा मत करना x कृ. - मैं उसे कैसे पहचानूं ? x भ. तू यहाँ से नगर में प्रवेश करने पर भय से जिसका सिर फूटे, वह मरकर 7वीं नरक में जाएगा। x कृष्ण पुनः नगर के लिए निकले x सोमिल ने सोचा - कृ. भ. के पास गया है, भ. मुझसे सही बता देंगे x अतः वो डर से भागता है x तभी सामने से कृष्ण को आते हुए देखा x डर से सिर फूट गया x टुकड़े-टुकड़े करवा देता है x पुत्र-पत्नी को देशनिकाल देता है x समुद्रविजयादि को कहता है x शोक करते हैं।

प्रव. निमित्त प्रतिद्वार + अन्य द्वार -

गा.725-6 ~~दंड, फाँसी, शस्त्र~~, दंड - Hunter - से गाढ़ घात होने पर, शस्त्र, फाँसी, अग्निदाह से, पानी में सभी स्रोत पूछने (राने) से, विष खाने पर, सर्पदंश से, शीत-उष्ण स्पर्श से, अरति और भय से मन में पीड़ा होने से, क्षुधा से शरीर की धातु खवाने से, प्यास से हृदय-गला-तालु सूखने से, मूत्र-पुरीष निरोध में शरीर का क्षोभ होने से, अर्द्धजीर्ण होने पर अनेक प्रकार से भोजन में रस का उपचय होने से, चंदन जैसे घिसने से, अंगुठे और उंगलि के बीच जू को घोलने से, इक्षु आदि की तरह पीलने से आयु भेद होता है।

आहार - eg. एक ब्राह्मण 18 बार खाने से शूल से मर गया।

वेदना - सिर, आँख आदि की वेदना से।

परोपघात - गिरने पड़ने से।

स्पर्श - विषयुक्त ~~सर्प~~ सर्प के स्पर्श से अथवा ब्रह्मदत्त का स्त्री रत्न।
ब्रह्मदत्त के मरने पर पुत्र ने स्त्रीरत्न को कहा - मेरे साथ भोग भोगो x उसने कहा - मेरा स्पर्श सहन करने के लिए तू समर्थ नहीं है x वह नहीं माना x अश्व मंगाया x स्त्रीरत्न ने मुख से लेकर कमर तक स्पर्श किया x अश्व वीर्यक्षय से मर गया x फिर भी वह नहीं माना x तो स्त्रीरत्न ने लोहमय पुरुष का आलिंगन किया, वह पिघल गया xx

प्राणापाननिरोध - यज्ञपाड़े वि. में भेड़ वि. को श्वास रोककर मारते हैं।

ये ७ उपक्रम हेतु सोपक्रम आयु वाले की आयु ही भेदते हैं।

पू. अध्यवसायादि भी निमित्त होने से ७ भेद उपन्यास योग्य नहीं है।

उ. आन्तर संबंधी उपाधि के भेद से निमित्तों का भेद से उपन्यास किया है।

पू. जो आयु उपक्रम हो तो कृतनाश, जिस कर्म से उपक्रम होता है, वह अकृत का आगम होगा?

उ. १०० वर्ष के लिए धान्य रखा हो और भस्मक रोग वाला अल्प काल में भोग ले तो कृतनाश या अकृतागम नहीं होता। वैसे।

★ ५. उपक्रमकाल पूर्ण (गा.660)।

अव. ६. देश काल –

गा.727 देशकाल २प्र. प्रशस्त, अप्रशस्त। प्रशस्त –
रसोई बन जाने पर गाँव को धूएँ बिना देखकर, कूएँ तट को महिला से शून्य देखकर तथा कौओं को घरों के ऊपर घूमते देखकर जानना कि अभी उत्तीव भिक्षाकाल है।

अप्रशस्त –

गा.728 मधुमक्खी रहित छत्ता, प्रकट निधि, शून्य दुकान देखकर जानना कि शहद वि. के ग्रहण का प्रस्ताव है। जिस स्त्री का पति बाहर गया हो, उसे आंगन में सोती हुई देखकर और मत्त देखकर जानना कि उसे भी ग्रहण करने का प्रस्ताव है।

★ ५. देशकाल पूर्ण (गा. 660)।

अव. ६. काल-काल। काल = मरण, मरण का काल = कालकाल। –

गा.729 अकाल में मरण करते कुत्ते द्वारा स्वाध्याय का काल हणाया। यहाँ कालशब्द का मृत्यु अर्थ बताया।

अव. ७. प्रमाण काल (गा.660) –

प्र.१ प्रमाण काल यानि $2\frac{1}{2}$ द्वीप में वर्तता दिन-रात रूप, विशिष्ट व्यवहार की हेतु ऐसा अद्धाकाल विशेष।

गा. 730 प्रमीयतेऽनेन जीवादीनामायुः प्रभृतिरिति प्रमाणं, तदेव कालः प्रमाणकालः।

प्रमाणकाल 24. - दिन और रात्रि।

~~सर्वजघन्य~~ ~~सर्वोत्कृष्ट~~

★ दिन सर्वजघन्य 12 मुहूर्त + रात सर्वोत्कृष्ट 18 मु. = दक्षिणायन-चरम दिवस

रात " 12 " + दिन " 18 = उत्तरायन चरम दिवस

★ दिन अथवा रात - 4 पौरसी की होती है।

पोरसी का सर्वजघन्य काल 3 मुहूर्त ($\frac{12}{4}$)।

सर्वोत्कृष्ट $4\frac{1}{2}$ मुहूर्त ($\frac{18}{4}$)।

★ एक अयन में $1\frac{1}{2}$ मुहूर्त का अंतर (पोरसी में)।

एक अयन = 183 दिन

183 दिन → $1\frac{1}{2}$ मुहूर्त

1 दिन → $\frac{1\frac{1}{2}}{183} \Rightarrow \frac{3}{2 \times 183} \Rightarrow \frac{1}{122}$

एक दिन में 1 मुहूर्त का 122वां भाग पोरसी में घटता या बढ़ता है।

अव. 8. वर्णकाल — (गा 660)

गा. 731 शुक्लादि 5 वर्णों का छाया से जो काला वर्ण, वह वर्णकाल है। (यहाँ काल शब्द का 'काला रंग' अर्थ करना) इस वर्णकाल से जो नामकृष्ण है किंतु वर्ण से गौर आदि है, उनका व्यवच्छेद किया।

अथवा

वर्ण = वर्णन करना। जिस पदार्थ का काल में वर्णन करे, वह वर्ण काल।

अव. 9. भावकाल (गा. 660) —

गा. 732 ★ औदयिकादि भावों की स्थिति = भावकाल।

★ औदयिकादि भावों की सादि सपर्यवसान आदि चतुर्भंगी करना।

★ औदयिक भाव — सादि सपर्यवसान — नारकादि के भव

अनादि सपर्यवसान — भव्य जीवों के मिथ्यात्वादि

अनादि अपर्यवसान – अभव्य का मिथ्यात्वादि।

औपशमिक भाव – सादि सपर्यवसान – औपशमिक सम्यक्त्वादि।

क्षायिक भाव – सादि सपर्यवसान – क्षायिक चारित्र, दानादि 5 लब्धि। सिद्ध चारित्री-अचारित्री आदि विकल्पों से रहित होने से।

सादि अपर्यवसान – क्षायिक ज्ञान-दर्शन।

[अन्य मत – ये सभी क्षायिक भाव सादि अपर्यवसान]

क्षायोपशमिक भाव – सादि सपर्यव. – भव्य के 4 ज्ञान।

अनादि सपर्यव. – भव्य के 3 अज्ञान।

अनादि अपर्यव. – अभव्य के 3 अज्ञान।

पारिणामिक भाव – सादि सपर्यव. – द्व्यणुकादि का पारिणामिक भाव।

अनादि सपर्यव. – भव्यों का भव्यत्व।

अनादि अपर्यव. – जीवत्व।

चूर्णि → उत्कृष्ट दिन (18 मु.) + जघन्य रात (12 मु.) = अषाढ़ पूर्णिमा को।

उत्कृष्ट रात (18 मु.) + जघन्य दिन (12 मु.) = पोष पूर्णिमा को।

दिन और रात समान (15 मु.) = चैत्र पूर्णिमा और आसो पूर्णिमा को।

जब दिन-रात समान होते हैं तब पोरसी का प्रमाण = $7\frac{3}{4}$ मु.।

→ पारिणामिक भाव – 29. सादि सपर्यव. – पुद्गलधर्म।

अनादि अपर्यव. – धर्म, अधर्म, आकाश के भाव।

मलयगिरीय

टीका गा. 733 यहाँ प्रमाणकाल से अधिकार है। किस क्षेत्र और काल में भ. द्वारा सामायिक कही गई?

प्र. गा. 660 में कहा था कि भावकाल से अधिकार है, यहाँ प्रमाणकाल कहते हो!

उ. क्षायिक भाव काल में वर्तते भ. द्वारा पूर्वाह्ण प्रमाणकाल में सामायिक कही गई। अथवा प्रमाणकाल भी अद्धाकाल का पर्याय होने से भाव काल ही है (पारिणामिक भाव)।

★ द्वार गा. 660 पूर्ण।

स्व. क्षेत्र द्वार – (द्वार गा. 145 निर्गम के निक्षेप देखना, Pg. No. 15 पर ★ देखना)

गा. 734 वै. सु. 11 दिन प्रथम पोरसी में महसेन वन उद्यान में सामायिक का निर्गम हुआ।

★ क्षेत्र ~~क्रियम~~ पूर्ण (~~द्वार गा. म्प्र~~ में ~~निर्गम के निक्षेप देखना~~) (उद्देसे निद्देसे द्वार) यहाँ जो काल द्वार (गा. ६६०-७३३ तक) और क्षेत्र द्वार कहा (गा. ७३४ में), ये दोनों द्वार के वर्णन के साथ ही निर्गम के निक्षेप की द्वार गा. १४५ के क्षेत्र-काल द्वार तथा उपोद्घात की मूल द्वार गाथा 'उद्देसे निद्देसे..' के भी क्षेत्र-काल द्वार समाप्त हुए। अर्थात् दोनों द्वार गा. के क्षेत्र-काल द्वार का वर्णन समान है। क्योंकि क्षेत्र-काल और पुरुष द्वार ~~की~~ निर्गम के अंग हैं, ऐसा पहले ही कहा जा चुका है। (स्पष्टता टिप्पणक में)

टिप्पणक

→ प्र. क्षेत्र-काल द्वार निर्गम के अंग हैं, ऐसा पहले कहाँ कहा?

उ. निर्गम के निक्षेप की गा. १४५ में क्षेत्र और काल निक्षेप कहने से यह उक्त है।

प्र. निर्गम के क्षेत्र-काल मूल द्वार गाथा के क्षेत्र-काल के साथ कैसे पूर्ण हो गए?

उ. निर्गम के अन्तर्गत क्षेत्र-काल सामान्य है क्योंकि सभी वस्तु के निर्गम में की विचारणा में इन दो द्वारों का अवतार होता है। मूलद्वारगाथा के क्षेत्र-काल द्वार सामायिक अध्ययन के विषय होने से विशेष हैं। विशेष की व्याख्या होने पर सामान्य की व्याख्या हो ही जाती है इसलिए निर्गम के अन्तर्गत क्षेत्र-काल को छोड़कर टीकाकार ने यहाँ मूलद्वार गाथा के क्षेत्र-काल का वर्णन किया। इस प्रकार लाघव होता है।

प्र. जैसे मूलद्वारगाथा के क्षेत्र-काल द्वार सामायिक के विषय होने से विशेष हैं, वैसे निर्गम भी विशेष क्यों नहीं है? निर्गम भी मूलद्वारगाथा में होने से मात्र सामायिक का विषय होगा।

उ. भाव निर्गम ही सामायिक के विषयरूप में अभिप्रेत है। शेष द्रव्यादि निर्गम तो भाव निर्गम के उपकारी होने से ही द्वारगा. १४५ में लिखे गए हैं। तथा उसी गाथा में वृत्तिकार हरिभद्रसू. ने कहा है कि यहाँ प्रशस्तभाव निर्गम से ही अधिकार है। शेष तो निर्गम के अंग होने से कहे।

मलयगिरीय
टीका
गा.735

भव* इस प्रकार निर्गम के निक्षेप की गा. 142 में भाव निर्गम बाकी है। भाव निर्गम- क्षायिक भाव में वर्तते महावीर प्रभु द्वारा सामायिक कहा गया, क्षायोपशमिक भाव में वर्तते गणधरों द्वारा सुना गया।

गणधर 7 निषद्या से 14 पूर्व रचते हैं। प्रणाम कर पूछना निषद्या कहा जाता है। भ. श्री 'उप्पन्नेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा' कहते हैं। इसे गणधर की 3 निषद्या कहा जाता है।

वे द्वादशांगी रचते हैं। भ. खड़े होकर इंद्र द्वारा लाए हुए चूर्ण को मुट्ठी में ग्रहण करते हैं। गणधर कुछ झुककर खड़े रहते हैं। देव वाद्य-गीत बंद करते हैं। भ. दव्वेहिं गुणेहिं पज्जवेहिं य तित्थं अणुजाणामि ऐसा बोलकर चूर्ण मस्तक पर डालते हैं। देव भी चूर्ण-पुष्प वृष्टि करते हैं।

इस प्रकार सामायिक अर्थ से भ., सूत्र से गणधरों से निकली।

* निर्गम के निक्षेप की गा. पद्ध पूर्ण।

अव. F. पुरुष द्वार (मूलद्वार गा. 'उद्देसे निद्देसे') -

गा.736 (द्वार गा.) द्रव्यपुरुष, अभिलाप पुरुष, चिह्न पुरुष, वेद पुरुष, धर्म पुरुष, अर्थ पुरुष, भोग पुरुष, भाव पुरुष। भावपुरुष जीव होता है। यहाँ भाव पुरुष का प्रयोजन है।

* नाम-स्थापना सुगम होने से नहीं कहे।

1. द्रव्यपुरुष - आगम से पुरुष को जानने वाला और अनुपयुक्त।
नोआगम से ज्ञशरीर, भव्यशरीर सुगम। तद्व्यतिरिक्त 3प्र. -

(a) एकभविक - जो एक भव में पुरुष होने वाला है। यह पूर्व भव में पुरुषायु नहीं बांधने पर भी पहले दिन से ही एकभविक पुरुष कहा जाता है।

(b) बद्धायुष्क - पूर्वभव में जिसने पुरुषायु बांध लिया हो।

(c) अभिमुख नाम गोत्र - जिसे अंतर्मुहूर्त में ही पुरुषायु, पुरुषनाम और पुरुषगोत्र उदय में आने वाला है।

अथवा

तद्व्यतिरिक्त 2प्र.

(a) मूल गुण निर्मित - पुरुष प्रायोग्य ऐसे औदारिक द्रव्य (जो जीव ने अभी तक ग्रहण नहीं किए।

(b) उत्तरगुण निर्मित - पुरुष प्रायोग्य ऐसे पुरुषाकार द्रव्य (जो जीव ने ग्रहण कर लिए हैं)

2. अभिलापपुरुष- अभिलप्यतेऽनेन इति अभिलापः शब्दः। पुँल्लिंग शब्द ही अभिलाप पुरुष हैं eg. घटः पटः।

3. चिह्नपुरुष- पुरुषचिह्न से उपलक्षित अपुरुष भी चिह्नपुरुष। eg. दाढ़ी-मूँछ वाला नपुंसक

4. वेदपुरुष- तीनों लिंग में वर्तता जीव तृणज्वाला समान वेद के अनुभवकाल में वेद पुरुष है।

5. धर्मपुरुष- धर्मार्जन व्यापार में तत्पर साधु।

7. भोगपुरुष- प्राप्त हुए सभी विषयसुख के भोग-उपभोग में समर्थ। eg. चक्रवर्ती।

8. भाव पुरुष- पूः = शरीरम्। पुरि शेते इति पुरुषः। निरुक्ति होने से भाव पुरुष जीव है।

6. अर्थपुरुष- अर्थार्जन में तत्पर eg. मम्मण।

* भावद्वार में अथवा भाव निर्गम में भावपुरुष रूप शुद्ध तीर्थंकर के जीव से सामायिक उत्पन्न हुई। (स्पष्टता नीचे के star* में)

* इस प्रकार भाव निर्गम द्वार पूर्ण हुआ। पुरुष द्वार भी भाव निर्गम में अंतर्गत है Pg. No. 36 (Ist Para))

टिप्पणक → प्र. क्षेत्र-काल निर्गम के अंग हैं, ऐसा कहा। पुरुष कैसे?

उ. निर्गम में भाव द्वार कहा। वहाँ क्षायिक भाव में वर्तते भ. और क्षायोपशमिक भाव में वर्तते गणधर पृच्छना है। अतः ये भाव पुरुष ही हैं।

मलयगिरीय टीका प्रव. गा. 737

पुरुष द्वार पूर्ण। (८) कारण द्वार- (मूल द्वार गा. देखना)

करोति कार्यम् इति कारणम्। ४निक्षेप- नाम स्थापना द्रव्य भाव।

* द्रव्य कारण → तद्व्यतिरिक्त २प्र.-

1. तद्द्रव्यकारण 2. अन्यद्रव्य कारण अथवा 1. निमित्त 2. नैमित्ति।

1. तद्द्रव्यकारण- पटादि द्रव्य का वही तन्तु आदि द्रव्य रूप कारण, तद्द्रव्य कारण।

2. अन्यद्रव्यकारण- पटादि का वेमादि (Machine) कारण, अन्यद्रव्य कारण।

1. निमित्तकारण- पट का निमित्त तन्तु। वे ही निमित्त कारण हैं, क्योंकि उनके बिना पट उत्पन्न नहीं होता।

2. नैमित्ति कारण - जैसे तंतु बिना पट नहीं बनता, वैसे तंतु में रहे आतान-वितान बिना भी पट नहीं बनता। आतान-वितान का कारण वेमादि है। अतः निमित्तस्य इदं कारणं नैमित्त कारण वेमादि।

गा. 738 अथवा

1. समवायी कारण - सम् = एकीभाव से, अव= अपृथक्पन, अय् अथवा इ धातु एकीभाव से अपृथक् गमन करना समवाय संबंध।
स एषां विद्यते ते समवायिनः तन्तवः। तंतु समवायी है क्योंकि पट तंतु में समवाय संबंध से रहता है अर्थात् समवेत होता है। अतः तंतु पट का समवायिकारण है।

2. असमवायिकारण- तंतुसंयोग तंतु का धर्म है। वह तंतु में समवेत है। वह कारण (तंतु) रूप द्रव्यान्तर का धर्म होने से पट रूप कार्य से दूर है, अतः पट के लिए वह असमवायिकारण है।

प्र. तद्द्रव्य-अन्यद्रव्यकारण, निमित्त-नैमित्तिक कारण और समवायि-असमवायिकारण, तीनों प्रकार में अर्थ का अभेद ही है तो अलग-अलग क्यों उपन्यास किया?
उ. अलग-अलग संज्ञा से अन्य दर्शन में स्वीकृत होने रूप फल बताने के लिए।

अथवा कारण 6प्र. का है -

1. कर्ता - क्रिया में उसका स्वतंत्र उपयोग होने से तथा उसके बिना विवक्षितकार्य की अनुत्पत्ति होने से वह अभीष्ट कारण है। eg. घट की उत्पत्ति में कुम्हार।

2. करण - साधकतम होने से। eg. मृत्पिंड, दंडादि।

3. कर्म - जो क्रिया से कर्ता को ईप्सित हो। 3प्र. निर्वर्त्य, विकार्य, प्राप्य। इनमें निर्वर्त्य और विकार्य कर्म में संस्कार दिखते हैं, जैसे - कट करने में शलाका-रचनादि दिखती है। प्राप्य कर्म में संस्कार नहीं दिखते eg. आदित्यं पश्यति।
(टिप्पणक)

प्र. जिसने स्वयं का स्वरूप ही प्राप्त नहीं किया, वह कैसे कारण है?
उ. कार्य के निर्वर्तन की क्रिया का विषय होने से उपचार से उसमें कारणता है। मुख्यवृत्ति से कार्यगुण की अपेक्षा से कारण है अर्थात् कर्म में करने योग्य गुण

होने से ही क्रिया की जाती है।

4. संप्रदान – सम्यक् अथवा सत्कार करके देना संप्रदान (हरिभद्रीय वृत्ति)। वह कर्म से अभिप्रेत होने के कारण क्रिया में कारण है। क्योंकि प्रयोजन बिना कार्य नहीं होता।

सम्यक् रीति से देना, वह संप्रदान। इसीलिए 'रजकस्य वस्त्रं ददाति' यहाँ चतुर्थी नहीं की। किंतु 'ब्राह्मणाय घटं ददाति' यहाँ संप्रदान में चतुर्थी की। (हरिभद्रीय वृत्ति)

eg. कुंभकार द्वारा बनते घट का संप्रदान जनपद है। यदि जनपद नहीं होता तो घट न बनाना ही श्रेयस्कर है। अतः घट का जनपद भी कारण है। इस प्रकार यहाँ कारक की कारणता स्वीकारना चाहिए। (टिप्पणक)

5. अपादान – 'दो धातु अवखण्डने' दानं = अवखण्डनं। अपसृत्य मर्यादया (आ) दानं अपादानं = थोड़ा दूर होकर मर्यादा पूर्वक अलग होना।

विवक्षित पदार्थ (पर्याय) का द्रव्य से दूर होकर ध्रुवत्व का नाश न होने की मर्यादा पूर्वक अलग होना वह अपादान। eg. पिंड रूप पर्याय से दूर होकर मृत्त्व का नाश न होने पूर्वक नई स्थास, कपालादि पर्याय को प्राप्त करना, इसमें मिट्टी ही अपादान है।

यह भी घट का कारण है क्योंकि इसके बिना घटादि कार्य उत्पन्न नहीं होते।

6. संनिधान – अधिकरण – यह कार्य को आधार रूप में उपकारक होने से कारण है। eg. घट का चक्र, चक्र का अधिकरण पृथ्वी, पृथ्वी का आकाश, आकाश का कोई कारण नहीं है क्योंकि वह स्वप्रतिष्ठित है। इन अधिकरण बिना घट की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

अब. द्रव्य कारण कहे। भाव कारण – (गा. 737 देखें)

गा. 4739 ★ भाव कारण – भाव रूप कारण या भाव विषयक कारण 2 प्र. – अप्रशस्त और प्रशस्त।

अप्रशस्त – संसार संबंधी। यह 1, 2 या 3 प्र. का होता है।

गा. 740 1 प्र. – अविरति रूप असंयम।

2 प्र. – अज्ञान और अविरति। अज्ञान = विपरीत बोध। अविरति = सावद्य योग अनिवृत्ति।

३प्र.– मिथ्यात्व अज्ञान अविरति। मिथ्यात्व= तत्त्वार्थ अश्रद्धान।
कषायादि के संपर्क से अन्य भेद भी करना।

प्र. १प्र. में अज्ञानादि को कारण क्यों नहीं कहा?
उ. अज्ञानादि अविरति को सहाय करने वाले होने से अप्रधान होने के कारण

गा.७५१ प्रशस्त – मोक्ष संबंधी। यह भी १, २ या ३ प्र. का संसार के कारण से विपरीत होता है।
१प्र.– संयम। २प्र.– ज्ञान, संयम। ३प्र.– सम्यग्दर्शन ज्ञान, चारित्र।

यहाँ सामायिक के व्याख्यान में क्षायोपशमिक और प्रशस्त भाव कारण से अधिकार है।

अव. कारण द्वार में शेष वक्तव्य कहते हैं–
गा.७५२–५ तीर्थंकर कृतकृत्य होने पर भी सामायिक अध्ययन क्यों कहते हैं? तीर्थंकर नाम कर्म भोगने के लिए।
गा.७५३–५ व्याख्या पूर्ववत् 'अगिलाए धम्मदेसणाईहिं'।
गा.७५५–८ गौतमादि गणधर सामायिक क्यों सुनते हैं? ज्ञान के लिए। उन्हें सुनने से शुभ-अशुभ पदार्थ का ज्ञान होता है, ज्ञान से प्रवृत्ति और निवृत्ति होती है।
प्रवृत्ति- निवृत्ति से संयम होता है, प्रवृत्ति से तप होता है। पहले संयम अर्थात् संवर करने पूर्वक तप सफल होता है इसलिए पहले संयम रखा।
संयम से संवर और तप से निर्जरा होती है। इससे अशरीरता।

ज्ञान → प्रवृत्ति और निवृत्ति → संयम और तप → संवर और निर्जरा
↓
नीरोग ← अनाकुल ← वेदनारहितता ↔ अनाबाधता ← अशरीरता
↓
अचल → शाश्वत → अव्याबाध सुख

इस प्रकार सुख के लिए गौतमादि सामायिक सुनते हैं।

अव. ★ कारण द्वार पूर्ण | 14. प्रत्यय द्वार – (मूलद्वार गा. देखना)

गा. 749 ★ जो प्रतीति कराए वह प्रत्यय |

★ निक्षेप 4 प्र. नाम स्थापना द्रव्य भाव | नाम-स्थापना सुगम |

★ द्रव्य प्रत्यय – तद्व्यतिरिक्त –

(i) द्रव्यं च तत् प्रत्ययश्च द्रव्यप्रत्ययः तप्तमाषक, घट वि. | यहाँ द्रव्य स्वयं की प्रत्यय करने योग्य वस्तु की प्रतीति का हेतु होने से द्रव्य ही प्रत्यय है।

(ii) द्रव्यात् प्रत्ययः द्रव्यप्रत्ययः – प्रतीति करने वाले पुरुष का तप्तमाषकादि से उत्पन्न प्रत्यय |

★ भाव प्रत्यय – 3 प्र. अवधि-मनःपर्यय-केवल ज्ञान, बाह्यलिंगकारण से अनपेक्ष होने से | मतिश्रुत ज्ञान बाह्य सापेक्ष होने से विवक्षित नहीं है।

★ सामायिक उपयोग रूप होने से भाव प्रत्यय का अधिकार है।

गा. 750 'मैं केवलज्ञानी हूँ' इस प्रकार प्रत्यय से तीर्थंकर प्रत्यक्ष ज्ञान से सामायिक अर्थ को जानकर सामायिक कहते हैं। श्रोताओं को भी हृदय में रहे सभी संशय नष्ट होने से प्रत्यय होता है कि ये सर्वज्ञ हैं।

अव. प्रत्यय द्वार पूर्ण | 15. लक्षण द्वार –

गा. 751 लक्ष्यतेऽनेन इति लक्षणं = पदार्थों विशिष्ट स्वरूप | 12 प्र.–

1. नामलक्षण – (i) 'नामलक्षणं' इति वर्णानुपूर्वी |

(ii) किसी वस्तु का 'लक्षण' ऐसा नाम करने से वह वस्तु |

(iii) नाम-नामवाले के अभेद उपचार से नाम च तल्लक्षणं च |

2. स्थापना लक्षण – (i) लकारादि वर्णों का आकार विशेष |

(ii) स्वस्तिक-शंख-चक्रादि लक्षणों को पट्ट पर चित्र वि. से बनाना

3. द्रव्य लक्षण – तद्व्यतिरिक्त – जिस द्रव्य का अन्य द्रव्य से व्यवच्छेद करने वाला जो स्वरूप, वह उस द्रव्य का लक्षण | eg. धर्मास्तिकाय का गतिसहायक |

यह तद्व्यतिरिक्त द्रव्य लक्षण ही कुछ विशेष से सादृश्यादि भेद वाला होता है।

4. सादृश्य लक्षण - eg. इस देश में घोड़े लंबी ग्रीवा, बड़ी कुक्षि वाले होते हैं; वैसे ही अन्य देश में भी।
eg. 'यह पाटलिपुत्र के घोड़े जैसा घोड़ा है।' (हरिभद्रीय टीका)

5. सामान्य लक्षण - eg. सिद्ध परस्पर सदृश्य, जीवत्व, मुक्त मुक्तत्वादि धर्मों से समान है।

6. आकार लक्षण - आकार:= आक्रियते अभिप्रेतं ज्ञायतेऽनेन इति :, शिरा।
यह आकार बाह्य चेष्टा रूप होता है। अंदर के रहस्य का ज्ञान कराने वाला होने से यह लक्षण होता है।
★ आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः॥
आकार, इंगित, गति, चेष्टा, स्वीकृति, आँख-मुख के विकारों से अंतर मन जाना जाता है।

7. गत्यागति लक्षण - दो-दो पद के विशेषण-विशेष्यता से अनुकूल गमन गति, प्रतिकूल गमन आगति। eg. जीव देव है! नहीं, देव जीव है? हाँ। यहाँ पहले जीव पद से देव पद पर जाना अनुकूलता से गमन है अतः गतिः। देव पद से जीव-पद पर गमन प्रतिकूल होने से आगति है। (स्पष्टता टीपणक में)
जहाँ पहले विशेषण बोलकर फिर विशेष्य कहा जाए, वह अनुकूलता पूर्वक गमन होने से गति कहा जाता है। व्यत्यय का उच्चारण हो तो आगति (टीपणक)।
इनके द्वारा जीवादि पदार्थ लक्षित किए जाते हैं इसलिए ये लक्षण हैं।
यह लक्षण चतु:-
(i) पूर्वपदव्याहत यानि पूर्वपद व्यभिचारी हो। eg. जीव देव है या देव जीव है? यहाँ पूर्वपद व्यभिचारी है क्योंकि जीव देव भी है, अदेव भी जबकि सभी देव जीव हैं।
(iii) ~~उत्तरपद व्याहत - eg. जो जीव है, वह जीता है या जो जीता है वह देव है? जो जीता है वह अवश्य~~
(ii) उत्तरपद व्याहत - eg. जो जीता है वह जीव है या जो जीव है वह जीता है? जो जीता है वह अवश्य जीव है, जो जीव है वह जीता भी है नहीं भी जीता है। यहाँ 10 प्राणधारी

को ~~जीव~~ जीता हुआ कहा है अतः सिद्धों के जीव जीते नहीं हैं।

(iii) उभयपद व्याहत - eg. भव्य जीव नारक है या नारक भव्य जीव है? भव्य नारक भी है, अनारक भी। नारक भव्य भी है, अभव्य भी। यहाँ दोनों तरफ व्यभिचार है।

(iv) उभयपदाव्याहत - eg. जीव जीव है या जीव जीव है? यहाँ एक जीव शब्द का उपयोग अर्थ करना। उपयोग जीव है और जीव उपयोग है। यहाँ दोनों में अव्यभिचार है।

लोक में यह लक्षण इस इन 4 प्र. का प्रसिद्ध है - * (Pg. No. 45)

(i) पूर्वपदव्याहत - eg. रूपी घटः

(ii) उत्तरपद व्याहत - eg. आम्रवृक्षः द्रुमः

(iii) उभयपद व्याहत - eg. नीलोत्पलम्

(iv) उभयपदाव्याहत - eg. जीवः सचेतनः।

8. नानातालक्षण - 4 प्र.

(i) द्रव्य - (a) तद्द्रव्यनानाता eg. परमाणुओं की परस्पर भिन्नता।
(b) अन्यद्रव्य नानाता eg. परमाणुओं की द्व्यणुकादि से भिन्नता।

(ii) क्षेत्र - (a) तत्क्षेत्रनानाता - एकप्रदेशावगाढ़ की परस्पर भिन्नता।
(b) अन्यक्षेत्रनानाता - एकप्रदेशावगाढ़ की द्विप्रदेशावगाढ़ादि से भिन्नता।

(iii) काल - (a) तत्कालनानाता - एकसमयस्थिति वालों की परस्पर भिन्नता।
(b) अन्यकालनानाता - एकसमयस्थिति वालों की द्विसमयादि स्थिति वालों से भिन्नता

(iv) भाव - (a) तद्भाव नानाता - एक गुण युक्त की परस्पर भिन्नता।
(b) अन्यभाव नानाता - एकगुण युक्त की एकादिगुण युक्त से भिन्नता।

यह पदार्थ के स्वरूप का अवस्थापक होने से लक्षण है।

9. निमित्त लक्षण - लक्ष्यते शुभाशुभं अनेन इति लक्षणम्। 8 प्र. - भौम, स्वप्न, अंतरिक्ष, दिव्य, अंग, स्वर, लक्षण, व्यंजन + (Pg. No. 45)

आठों 3-3 प्र. के भूत-भविष्य-वर्तमान।

* लोकप्रसिद्ध षड्.के गत्यागति लक्षण के लिए मलयगिरिसूरि म. ने विशेषावश्यक भाष्य की गा. 2160 दी है-

रूवी पडोत्ति चूतो दुमोत्ति नीलुप्पलं च लोयम्मि।
जीवो सचेयणोत्ति य भंगचउक्कं फुडं सिद्धं ॥2160॥

हरिभद्रीय टीका में भी यही गाथा है किंतु चौथा पद 'विगप्पनियमादयो भणिया' है। इस पद का अर्थ मलधारी हेमचंद्रसूरि ने टीप्पणक में किया है।

~~निमित्त लक्षण के लिए~~

10. उत्पाद लक्षण - अनुत्पन्न वस्तु इससे जानी जाती है इसलिए यह उत्पाद भी लक्षण है।

11. विगमलक्षण - विनाश भी वस्तु का लक्षण है क्योंकि उसके बिना उत्पाद नहीं होता।

टीप्पणक △ निमित्त लक्षण के लिए मलयगिरीय और हरिभद्रीय टीका में गा.-
'भोमं सुमिणंतलिक्खं दिव्वं अंग सर लक्खणं तह य।
वंजणमट्ठविहं खलु निमित्तमेयं मुणेयव्वं॥'
दोनों टीकाकार ने 'स्वरूपमस्य ग्रंथांतरादवसेयम्' लिखकर अर्थ नहीं किया है।
इनके अर्थ -

1. भौम= भूकंपादि। 2. स्वप्न प्रसिद्ध है। 3. आंतरिक्ष= गांधर्वनगरादि।
4. दिव्य= व्यंतरादि कृत अट्टहास्यादि। 5. अंग= सिर फरकनादि। 6. स्वर= पक्षी वि. की आवाज
7. लक्षण= सामुद्रिक शास्त्र में प्रतिपादित स्त्रीपुरुषादि के लक्षण।
8. व्यंजन= तिल-मसादि।

मलयगिरीय टीका गा. 752 12. वीर्यलक्षण- बल जीव का लक्षण है अथवा चेतन या अचेतन वस्तु की जो सामर्थ्य वह उसका लक्षण है।

12. भाव लक्षण- औदयिकादि भावों का लक्षण भाव लक्षण।
औदयिक भाव का लक्षण उदय। औपशमिक भाव का लक्षण उपशम।
क्षायिक " " " अनुत्पत्ति। क्षायोपशमिक " " " मिश्र।
पारिणामिक " " " परिणाम। सांनिपातिक " " " संयोग।

जीव का गुण रूप सामायिक का लक्षण क्षय, क्षयोपशम या उपशम है।
अथवा
गा.753 भाव सामायिक के 4 लक्षण हैं -
सम्यक्त्व सामायिक का श्रद्धा।
श्रुत " " ज्ञान।
चारित्र " " विरति।
चारित्राचारित्र " " विरति-अविरति।

अब लक्षण द्वार कहा गया। उ. नय द्वार - (मूल द्वार गा.)-
गा.754 नय = अनेक धर्म वाली वस्तु को अवधारण पूर्वक नित्यत्वादि कोई एक धर्म से प्रतिपादन करने की बुद्धि को जिस से प्राप्त किया जाए, वह अभिप्राय विशेष नय है।

★ जो नय अन्य नय की सापेक्षता से वस्तु को स्वीकारता है, वह परमार्थ से परिपूर्ण वस्तु को ग्रहण करने वाला होने से प्रमाण में ही अन्तर्भूत होता है।
जो अन्य नय से निरपेक्ष स्वाभिप्रेत धर्म से अवधारण पूर्वक ही वस्तु को जानता है, वह नय है क्योंकि वह वस्तु के एकदेश को ग्रहण करने वाला है।

★ इसलिए तत्त्ववेदी हमेशा स्यात्पूर्वक ही वाक्य प्रयोग करता है। यदि स्यात् न हो तो भी स्यात् समझ लेना।
'अप्रयुक्तोऽपि सर्वत्र स्यात्कारोऽर्थात् प्रतीयते।
विधौ निषेधेऽन्यत्रापि कुशलश्चेत् प्रयोजकः।

★ 1. सर्वत्र 'स्यात्' पद के प्रयोग से अवधारण विधि तो मूल से ही दूर हो गई क्योंकि दोनों में परस्पर विरोध है।
2. दोनों में विरोध नहीं है। 'स्यात्' पद का प्रयोग विवक्षित वस्तु के अनुयायी अन्य धर्मों के संग्रहण रूप स्वभाव वाला है जबकि 'एवकार' का आशंका किए हुए उन-उन अन्ययोगादि के व्यवच्छेद रूप फल वाला है।

★ अन्य अवधारण विधि के अन्ययोगव्यवच्छेदादि 3 अर्थ →

1. अन्ययोगव्यवच्छेद - एवकार विशेष्य के पीछे लगता है।
ज्ञानदर्शनवीर्यसुखोपेतः जीवः भवति नवा? 'स्याज्जीव एव'।
एवकार का फल - जीव शब्द के वाच्यत्व में जो शंका थी, उसका निषेध।
स्यात् का फल - ज्ञानदर्शनादि असाधारण और अमूर्तत्व-सूक्ष्मत्वादि साधारण, अन्य सभी धर्मों की प्रतीति।
यदि 'एव' न हो तो अजीव भी ज्ञानादि से युक्त होने से जीव-अजीवव्यवस्थालोप।

2. अयोगव्यवच्छेद - एवकार विशेषण के पीछे।
ज्ञानदर्शनादिलक्षणो जीवः वा अन्यलक्षणः? स्यात् ज्ञानादिलक्षण एव जीवः।
एवकार का फल - अन्य लक्षणों का व्यवच्छेद।
स्यात् का फल - सभी धर्मों की प्रतीति।
यदि एवकार न लगाएँ तो जीव अन्यलक्षण वाला भी हो जाने से जीव-अजीव व्यवस्था लोप।

3. -एवकार क्रिया के पीछे।
जगति जीवो अस्ति नवा? स्यादस्त्येव जीवः।
एवकार का फल - जीव के अभाव की शंका का व्यवच्छेद।
स्यात् का फल - अन्य सभी धर्मों की प्रतीति (अथवा अन्य अपेक्षा से जीव के नास्तित्व की भी प्रतीति)।
यदि 'एव' न लगाएँ तो जीव का अभाव भी हमें प्रतीत होता।

★ प्र. सिद्धांत में तो अवधारण अनुमत नहीं है?
उ. ① सिद्धांत में ही अनेक जगह अवधारण देखा जाता है यथा 'किमियं भंते! कात्योति पवुच्चइ? गोयमा! जीवा चेव अजीवा चेव"
② जो अवधारणी भाषा का निषेध किया जाता है, वह वस्तुतत्त्व के निर्णय के अभाव में और कहीं पर एकांत प्रतिपादिका होने से निषेध किया जाता है किंतु स्यात्पद के प्रयोग में नहीं।

★ दिगंबरों अनुसार प्रमाण नय की परिभाषा और उसका खंडन -

संपूर्णवस्तुकथन = प्रमाणवाक्य। eg. स्याज्जीव: इत्यादि।
एकदेशकथन = नय। जो नय अन्य नयों से सापेक्ष है वह सुनय, जो निरपेक्ष है वह दुर्नय/नयाभास।
वे दिगंबर नयवाक्य में भी स्यात् पद का प्रयोग करते हैं क्योंकि स्यात्पद के प्रयोग से ही सम्यक् एकांत होता है। eg. 'स्याज्जीव एव' प्रमाणवाक्य, 'स्यादस्त्येव जीव' नयवाक्य। ये उदाहरण अष्टशती में अकलंक ने दिए हैं।

★ नय ७ प्र.- नैगम संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ एवंभूत।

अव. नैगम नय का स्वरूप-

गा. ७५५ ★① न एकै: मानै:- सामान्यविशेषादिविषयै: प्रमाणै: मिमीते- परिच्छिनत्ति वस्तु इति नैगम: 'पृषोदरादय:' सूत्र से रूप सिद्धि। यहाँ 'नञ्' नहीं है, केवल 'न' है इसलिए 'अन् स्वरे' नहीं हुआ।
अनेक प्रमाणों से वस्तु को जानने वाला।
② निश्चित: गम: निगम:- परस्परविविक्तसामान्यादिवस्तुग्रहणं। 'प्रज्ञादिभ्योऽण्' से स्वार्थिक अण् प्रत्यय नैगम:।
③ निगम्यन्ते परिच्छिद्यन्ते इति निगमा: तेषु भव: यो हि अभिप्राय:- नियतपरिच्छेद-रूप: स नैगम:।

★ यह सत्ता रूप महासामान्य, द्रव्यत्व-गुणत्व-कर्मत्वादि अवांतर सामान्य, पररूप व्यावर्तन करने वाले अवांतर सामान्य, और सभी से असाधारण अंत्य विशेष सभी को स्वीकारता है।

★ नैगम नय के तर्क →
① सत्ता की सिद्धि - सभी पदार्थों में "सत् सत्" इस प्रकार प्रत्यय समान होता है। वह द्रव्यादि मात्र के निबंधन वाला नहीं है क्योंकि
यदि द्रव्य के निबंधनवाला मानेंगे तो गुणादि में 'सत् सत्' प्रत्यय नहीं होगा क्योंकि वहाँ द्रव्यत्व का अभाव है।
यदि गुण मात्र निबंधन वाला मानेंगे तो द्रव्यादि में "सत् सत्" प्रत्यय नहीं होगा क्योंकि

वहाँ गुणत्व का अभाव है। इस प्रकार सभी पदार्थ में जानना।
अतः द्रव्यादि से अत्यंत सत्ता नामक महासामान्य है जिससे सभी जगह 'सत् सत्' ऐसा प्रत्यय होता है।

(2) अवांतर सामान्य की सिद्धि - इसी प्रकार एक द्रव्य में 'द्रव्यं द्रव्यं' ऐसा अनुगत प्रत्यय होने से द्रव्यत्व नामक अवांतर सामान्य भी स्वीकारना चाहिए। इसी प्रकार गुणत्व - कर्मत्व - गोत्व - अश्वत्वादि अवांतर सामान्य भी स्वीकारना। इन्हें 'सामान्यविशेष' कहा जाता है, क्योंकि ये स्व-स्व आधार में अनुगतप्रत्यय के हेतु होने से सामान्य हैं और विजातीयों से व्यावृत्ति करने वाले होने से विशेष हैं।

(3) अन्त्य विशेष की सिद्धि - तुल्य जाति गुण क्रिया के आधार रूप परमाणु - आकाशादि आदि नित्य द्रव्यों की अत्यंत व्यावृत्ति के हेतु अन्त्यविशेष हैं। eg. परमाणु तुल्य गुण - जाति - क्रिया और आधार वाले हैं। उनमें परस्पर व्यावृत्ति का हेतु अंत्य विशेष है। ये योगियों को ही प्रत्यक्ष होते हैं।

(4) अवांतर सामान्य की सिद्धि - अवांतर विशेष तो घट-पटादि में परस्पर व्यावृत्ति करने वाले सभी लोगों को परस्पर प्रत्यक्ष हैं।

★ ये महासामान्य - अवांतरसामान्य - अंत्यविशेष - अवांतर विशेष परस्पर अत्यंत भिन्न स्वरूप वाले हैं क्योंकि सामान्यग्राही ज्ञान में विशेष का भास नहीं होता और विशेष-ग्राही ज्ञान में सामान्य का भास नहीं होता। तथा अनुमान प्रयोग -
यद् यथाऽवभासते तत् तथाऽभ्युपगन्तव्यं, यथा नीलं नीलतया, अवभासते च परस्परविसकलितस्वरूपाः सामान्यविशेषाः।

★ Q. यदि नैगम नय सामान्य विशेष दोनों मानता है तो यह सम्यग्दृष्टि ही है?
A. नहीं, यह मिथ्यादृष्टि ही है क्योंकि यह सामान्य-विशेष, दोनों को अत्यंत भिन्न या एकांत भिन्न मानता है। यह गुण-गुणी, अवयव-अवयवी, क्रिया-कारक में एकांत भेद मानता है।
जैन मत तो सभी जगह भेदाभेद मानता है।

न्याय दर्शन का खंडन

सामान्य-विशेष की एकांत भिन्नता का खंडन -

★ ① पर या अपरसामान्य द्रव्यादि में अनुगतप्रत्यय से जैसे होता है, वैसे वह विशेष में भी हो सकता है क्योंकि उसमें भी 'विशेष विशेष' ऐसा अनुगतप्रत्यय होता है। किंतु सामान्य आप विशेष में नहीं मानते, द्रव्य-गुण-कर्म में ही मानते हो।

② गोत्व-अश्वत्वादि में भी 'सामान्य सामान्य' ऐसा अनुगत प्रत्यय होने से उसमें भी सामान्य होगा किंतु आप सामान्य में सामान्य नहीं मानते।

③ आपके अनुसार विशेष का लक्षण - 'येन बुद्धिर्वचनं वा पदार्थान्तरेभ्यः विशिष्यते स विशेषः' यह लक्षण तो पर-अपर सामान्य में भी घटता है। eg. सत्ता नामक महासामान्य गोत्वादि से बुद्धि और वचन को विशेष करता है। अतः सामान्यों में भी विशेषत्व की आपत्ति है।

★ सत्ता के समवाय का खंडन -

1. आप सत्ता को द्रव्य-गुण-कर्म उपदार्थ में मानते हो। सत्ता के समवाय से वे सत् होते हैं। यह असमीचीन है क्योंकि उसमें दो विकल्प है - सत्ता के समवाय से द्रव्यादि का सत्त्व स्वरूप से सत् द्रव्यादि का होता है या असत् द्रव्यादि का?

① यदि सत् द्रव्यादि का सत्त्व मानो तो 2 आपत्ति

ⓐ सत् द्रव्यादि में सत्ता के समवाय की कल्पना व्यर्थ होगी क्योंकि द्रव्यादि पहले से ही सत् है।

ⓑ सत् ऐसे भी द्रव्यादि में सत्ता का समवाय करो तो सत्ता में भी सत्ता का समवाय कर दो क्योंकि दोनों में सत्त्व का अविशेष है। उस सत्ता के समवाय में भी सत्ता का समवाय कर दो ... इस प्रकार अनवस्था।

② यदि असत् द्रव्यादि का सत्त्व मानो तो खरविषाण की तरह असत का सत्ता के साथ समवाय असंभव है।

★ अवांतर सामान्यों का खंडन -

① द्रव्यत्व-गुणत्व-कर्मत्व सामान्य के समवाय का खंडन -

द्रव्यत्व सामान्य का योग सत् ऐसे द्रव्य के साथ होता है या सत् ऐसे अद्रव्य के साथ?

(a) यदि द्रव्य के साथ मानो तो द्रव्यत्व का समवाय व्यर्थ होगा और पूर्वोक्त रीति से अनवस्था दोष भी होगा।

(b) यदि अद्रव्य के साथ मानो तो गुण-कर्मादि भी अद्रव्य होने से उनके साथ भी समवाय की आपत्ति होगी।

इस प्रकार गुण-कर्म में गुणत्व-कर्मत्व का प्रतिषेध भी जानना।

(2) गोत्वादि सामान्य सर्वगत है या असर्वगत है?

(a) यदि सर्वगत है तो जैसे गायों में गोत्व होने से 'गौः गौः' ऐसा प्रत्यय होता है वैसे ही 'अश्वः अश्वः' ऐसा प्रत्यय भी होना चाहिए क्योंकि अश्वत्व सामान्य भी वहाँ विद्यमान है।

इसी प्रकार अश्व में भी 'गौः गौः' प्रत्यय होना चाहिए क्योंकि वहाँ भी गोत्व है। इस प्रकार प्रत्यय (ज्ञान) के सांकर्य की आपत्ति होगी।

(b) असर्वगत पक्ष में सामान्य क्रिया रहित और अवयव रहित माना जाता है, वह (क) सामान्य उत्पन्न होते हुए पदार्थ के देश में जाने के लिए समर्थ नहीं है क्योंकि क्रिया रहित है। अतः वह वहाँ कैसे वर्तता है?

(ख. घट उत्पन्न हो रहा है। वहाँ घट न होने से घटत्व नहीं है। अतः घट उत्पन्न होने पर वहाँ घटत्वसामान्य कैसे आगया क्योंकि घटत्व सामान्य तो असर्वगत और अक्रिय है।)

(ख) (3) सामान्य से युक्त व्यक्तियों में सामान्य सर्वात्मना रहता है, वा एकदेश से रहता है?

यदि सर्वात्मना मानो तो जितने व्यक्ति होंगे उतने सामान्य की आपत्ति।

यदि देश से मानो तो सामान्य पदार्थ सावयव हो जाएगा किंतु आप तो सामान्य को एक, नित्य, अक्रिय, निरवयव मानते हो।

उस देश में भी सामान्यपदार्थ सर्वात्मना रहता है या देश से? यदि सर्वात्मना मानो तो पदार्थ के पूर्ववत् अनंत सामान्य होंगे। देश मानो तो पूर्ववत् आपत्ति। इस प्रकार देश का भी देश होने से अनवस्था।

इस प्रकार एकांत भेद मानने से आपत्ति होगी।

★ जिनमतानुसार भेदाभेद मानने से उपर्युक्त कोई आपत्ति नहीं आएगी।

अब. संग्रह ~~नय~~ नय का ~~स्व~~ स्वरूप – संगृहीत और पिंडितार्थ संग्रहवचन को संक्षेप से कहता है। (मू

गा. 756 (पूर्वार्ध) ★ सङ्गृह्णाति- अशेषविशेषतिरोधानद्वारेण सामान्यरूपतया समस्तं जगदादत्ते इति सङ्ग्रहः

★ संग्रह नय के तर्क-

① विशेष भाव रूप सामान्य से व्यतिरिक्त है या अव्यतिरिक्त है?

ⓐ यदि व्यतिरिक्त मानो से विशेष हो ही नहीं सकते क्योंकि सत्ता बिना कुछ नहीं होता eg. खपुष्प।

ⓑ यदि अव्यतिरिक्त मानो तो विशेष भी भाव ही होंगे।

② विशेष की व्यवस्थापक प्रमाण का अभाव है क्योंकि भेद रूप विशेष कोई भी प्रमाणभेद का अवगाहन नहीं करते हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान भाव से संपादित सत्ता वाली वस्तु का ही साक्षात्कार करने के लिए समर्थ है, अभाव का ~~सम~~ नहीं। क्योंकि अभाव सभी शक्ति को रोकता होने से प्रत्यक्ष के ~~ज्ञा~~ उत्पादन में व्यापार नहीं करता।

यदि अनुत्पादक का भी साक्षात्कार मानोगे तो विशेष का अभाव होने से जीव सर्वदर्शी हो जाएगा। यह तो अनिष्ट है।

इसलिए संग्रह नय भाव को ग्रहण करने वाले प्रत्यक्ष ~~से~~ को ही मानता।

~~वह प्रत्यक्ष से विशेष भी नहीं है, अनुमानादि से भी नहीं है।~~

वह प्रत्यक्ष से विशेष नहीं है और अनुमानादि से भी नहीं है' ऐसा मानता है क्योंकि अनुमानादि अन्य प्रमाण भी प्रत्यक्ष पूर्वक ही होते हैं।

अतः सामान्य ही परमार्थ सत् है, विशेष नहीं।

अब. व्यवहार नय का स्वरूप - सर्वद्रव्यों में विनिश्चयार्थ के लिए व्यवहार नय जाता है। (मूल)

गा-७८४६ (उत्तरार्ध) ★ विशेषत: अवह्रियते-निराक्रियते सामान्यं अनेन इति व्यवहार:।
यह विशेष के प्रतिपादन में तत्पर है।

★ व्यवहार नय के तर्क -

(1) 'सत्' इस प्रकार कहने पर घट-पटादि अनिर्दिष्ट स्वरूप वाले कोई विशेष की ही प्रतीति होती है, संग्रह नय को सम्मत सामान्य की नहीं। क्योंकि वह सामान्य अर्थक्रिया के सामर्थ्य से रहित होने के कारण लोकव्यवहार के पथ से अतीत है।

(2) नास्ति सामान्यम्
उपलब्धिलक्षणप्राप्तस्य तस्य अनुपलब्धे:
यद् उपलब्धिलक्षणप्राप्तं सत् न उपलभ्यते तदसत् इति व्यवहर्त्तव्यम्।
यथा क्वचित् केवलभूतलप्रदेशे घट:
न चोपलभ्यते उपलब्धिलक्षणप्राप्तं सत् सामान्यम्
इति स्वभावानुपलब्धि:
इस प्रकार स्वभावानुपलब्धि होने से सामान्य नहीं है।

(3) सामान्य विशेषों से भिन्न है या अभिन्न?
(a) यदि भिन्न मानो तो सामान्य का अभाव ही होगा क्योंकि विशेष से भिन्न ऐसा सामान्य असंभव है। eg. मुकुलित - अर्द्धमुकुलितादि विशेष से रहित खपुष्प कुछ नहीं होता।
(b) यदि अभिन्न मानो तो वह विशेष ही है, स्वरूप की तरह।

(4) जो आपने कहा था कि 'प्रत्यक्ष भाव से संपादित सत्ता वाली वस्तु का ही साक्षात्कार करने के लिए समर्थ है' (Pg. No. 52, Pt. No. (2)) वह भी मूर्खवचन है। प्रत्यक्ष संपादितसत्ता वाला उससे कहा जाता है, जो उत्पन्न होकर प्रत्यक्ष को साक्षात्कार करे। घटपटादि रूप विशेष प्रत्यक्ष को साक्षात् करते हैं, सामान्य नहीं। अभाव रूप विशेष (घटाभाव, पटाभाव) भी प्रत्यक्ष को साक्षात् नहीं करता है।

नहीं, वह नय उपचार से शब्द कहा जाता है।

(3) इस नय का अन्य नाम साम्प्रत नय भी है। क्योंकि यह भी ऋजुसूत्र नय की तरह ~~क्य~~ वर्तमानकालिक वस्तु ~~ही~~ और स्वकीय ही स्वीकारता है।

★ शब्द नय के तर्क-

(1) भाव निक्षेप मानने का कारण-

(a) नामस्थापनाद्रव्य घट घट ही नहीं है क्योंकि वे घट का कार्य तो करते नहीं है।

~~(a)~~ यत् यत् घटकार्यकारि न तत् घट: न, यथा पट:
तस्मात् नामादिघटानां घटत्वाभाव:

(b) नामादिघटानां घटत्वाभाव:, तल्लिङ्गादर्शनात्
नामादिघटों में ~~ब~~ कंबुग्रीवादिमत्त्वादि घट के लिंग या जलधारण न होने से घट हम कैसे मानें?

(c) नामादि घटों को घट रूप में स्वीकारते ऋजुसूत्र नय को प्रत्यक्षविरोध है क्यों नामादि घट प्रत्यक्ष से ~~पटादि~~ पटादि की तरह अघट रूप में ही उपलब्ध होत

(2) लिंग-वचन के भेद से वस्तु भिन्न मानने के कारण-
तटशब्द का वाच्य अर्थ अलग है, तटी का अलग।
गुरु:शब्द का " " ~~गुरु~~ गुरव: का अलग।
क्योंकि अर्थ को अनुसरण न करने से उनमें अर्थ से भिन्नत्व है।
ये परस्परमर्थतोऽननुयायिन: ते भिन्नार्था व्यवहर्तव्या: यथा घटपटादिशब्दा:
जिस लिंग में वाचक बोलता है, उसे उसी लिंग में इष्ट होता है। Δ (टिप्पणक →)

(3) पर्यायवाची शब्द भी मानने का कारण-
जो इंद्र-पुरंदर-शक्रादि शब्द हैं, वे एक ही लिंग-वचन वाले होने से एकार्थ है क्योंकि उनका अर्थ एक ही है।

अब, समभिरूढ नय का अर्थ-

समभिरूढ नय में वस्तु का संक्रमण अवस्तु होता है।

गा. ~~७६६~~ 758 (~~उत्तरार्ध~~) (पूर्वार्ध) ★ सम्-एकीभावेन अभिरोहति-व्युत्पत्तिनिमित्तं आस्कन्दति शब्दप्रवृत्तौ यः स समभिरूढः।

शब्द की प्रवृत्ति में यह नय व्युत्पत्ति निमित्त से अर्थभेद करता है।
अतः पर्यायवाची शब्दों को नहीं मानता।

eg. घटनात् घटः - युवति के मस्तक पर आरोहादि लक्षण रूप कोई विशिष्ट चेष्टा वाले अर्थ में घट कहा जाता है।
कुट कौटिल्ये, कुटनात् कुटः - पृथुबुध्न उदर कंबु-ग्रीवादि आकार से कुटिल होने के कारण कुट कहा जाता है।
उभ उंभ पूरणे, कुः पृथ्वी, कौ स्थितस्य उम्भनात्-पूरणात् कुम्भः - पृथ्वी पर रहे हुए को पूरने से कुम्भ।

★ समभिरूढ नय के तर्क-
अन्य शब्द से अभिधेय द्रव्य या पर्याय उससे अन्य शब्द से वाच्यवस्तु की शब्द-रूपता को में ~~झ~~ संक्रमित नहीं होता eg. घटशब्द का वाच्य अर्थ कभी भी पट शब्द से वाच्य वस्तु रूपता को प्राप्त नहीं करता।
यदि ऐसा न मानो तो सकललोक में प्रसिद्ध प्रतिनियत विषय की प्रवृत्ति-निवृत्ति आदि व्यवहार के उच्छेद का प्रसंग आएगा।

पू. (शब्दनय) प्रतीति के बल से पर्याय शब्द एकार्थ के ही अभिधायक हैं।
उ. (समभिरूढ नय) यदि युक्ति बिना की प्रतीति को भी मानोगे तो मंदप्रकाश वाले और दूर देश में रहे भिन्न ऐसे निंबू-कदंब-अश्वत्थ-कपित्थादि वृक्ष एक वृक्ष के आकार वाले ही दिखते हैं अतः उन्हें एक मान लेना चाहिए। किंतु ऐसा नहीं होता क्योंकि इस प्रतीति के विपरीत ऐसी पूर्वप्रतीति से उन्हें अलग ही मानते हैं।

टीप्पणक ★ (अनुसंधान Pg. No. 55 last Para)
शब्द का वाच्य अर्थ यानि घटादिलक्षण रूप पदार्थ लेना, मात्र शब्दार्थ नहीं। अतः यह ज्ञान हुआ और उपचार से वह ज्ञान स्वरूप नय शब्द कहलाता है।

Δ (अनुसंधान Pg. No. 56)

यहाँ पर हरिभद्रीय वृत्ति में दो उदाहरण है - 'स्त्रीपुरुषवत् कुटवृक्षवत्'।
स्त्री-पुरुष दृष्टांत तो लिंगभेद में है। कुटवृक्ष दृष्टांत वचन भेद में है।
कुटवृक्ष दृष्टांत वचन भेद में कैसे घटाना, इस पर मलधारि हेमचंद्रसूरिजी लिखते हैं:-

पू. भिन्न वचन स्वीकारा होने से ~~यहाँ~~ और एकत्व का अभाव होने से 'कुटवृक्षवत्' यह उदाहरण असंगत है क्योंकि कुटश्च वृक्षश्च कुटवृक्षौ, तौ इव कुटवृक्षवत् इस प्रकार समास होने से यहाँ वचनभेद नहीं है।

उ. यदि यहाँ एकवचनान्त दो पदों का समास अभिप्रेत होता तो आपकी बात सही होती। किंतु यहाँ कुटश्च वृक्षौ च इस प्रकार समास कर वृत्ति कराई है। अतः वचन भेद है।

पू. ऐसा हो तो भी उदाहरण अयुक्त है। यहाँ वचन अभेद होने पर भी कुट और वृक्ष शब्द की पर्यायता नहीं है क्योंकि दोनों भिन्न जातीय वस्तु के वाचक हैं।
कुट = घट, वृक्ष = शाखादि वाला पदार्थ।

उ. यह (पूर्वपक्ष कृया दोष) असिद्ध है क्योंकि कौ-पृथ्व्यामटति इति व्युत्पत्ति से कुट शब्द द्वारा वृक्ष ~~ही कहा जाता है~~ ही यहाँ विवक्षित है। अतः ये दोनों पर्यायवाची है।

कहीं पर 'कूटवृक्षवत्' ऐसा पाठ है। वहाँ तो कूट शब्द द्वारा निर्विवाद रूप से वृक्ष ही कहा जाता है।

हमारा यह संप्रदाय है। बुद्धिमानों द्वारा अन्य प्रकार से भी विचारणीय है।

मलयगिरीय टीका अव. एवंभूत नय का स्वरूप -

गा. 758 (उत्तरार्ध) एवंभूत नय व्यंजन - अर्थ और तदुभय को विशेषित करता है।

★ व्यज्यतेऽनेन व्यनक्ति वा इति व्यञ्जनं - शब्दः। जिसके द्वारा व्यक्त किया जाए।

★ एवंभूत नय शब्द को अर्थ से विशिष्ट करता है अर्थात् अर्थ के वश से नियतपन में स्थापित करता है। eg. घट शब्द वही है जो विशिष्ट चेष्टा वाला अर्थ हो। यहाँ घट शब्द का अर्थ के साथ का अर्थ नियमन करता है।

यह नय अर्थ को शब्द से विशिष्ट करता है अर्थात् शब्द के वश से अर्थ को नियतपने में स्थापित करता है। eg. जो जलधारणादि विशिष्ट चेष्टा वाला है वही घट है। यहाँ अर्थ का शब्द के साथ नियमन किया।

* एवंभूत का अर्थ–
'एवं' शब्द प्रकार अर्थ वाला है। 'एवं = इस प्रकार'।
एवं यथा व्युत्पादितः तं प्रकारं भूतः = प्राप्तः एवंभूतः-शब्दः।
जिस प्रकार व्युत्पत्ति की हो उस प्रकार को प्राप्त, वह एवंभूत।
तत्समर्थनप्रधानः नयः अपि उपचारात् एवंभूतः।– ऐसे एवंभूत शब्द के समर्थन में प्रधान होने से नय भी एवंभूत।
एवंभूत शब्द का समर्थन 2प्र. से–

(a) जिस अर्थ में शब्द की व्युत्पत्ति हो, उसका व्युत्पत्ति निमित्त वाला अर्थ जब स्वरूप में वर्ते तभी वह अर्थ उस शब्द के वाच्यत्व को प्राप्त करता है। eg. घटनात् घटः - पानी को धारण करने वि. के काल में ही (↓*) स्त्री के मस्तक पर आरूढ घड़ा घट शब्द से वाच्य है, शेषकाल में नहीं।

(b) शब्द का जो व्युत्पत्ति अर्थ है, वह शब्द जब उसी अर्थ का प्रतिपादन करता हो तभी वह शब्द उस अर्थ के वाचकत्व को प्राप्त करता है। eg. घटशब्द तात्त्विक रीति से वही है, जो विशिष्ट चेष्टावान् अर्थ का प्रतिपादन करता हो, शेष शब्द नहीं क्योंकि शेष शब्द स्वयं के अभिधेय अर्थ से शून्य है।

* स्थान पर रहा हुआ घड़ा जलधारण करे तो भी एवंभूत नय से वह घटशब्द वाच्य नहीं है। स्त्रीमस्तक पर आरूढ होकर जलभरणादि क्रिया करता हो तो ही घट है। (टीप्पणक)

* अन्य उदाहरण– जीवति इति जीवः, 10प्र. के प्राणों को धारण करने वाला नारकादि रूप संसारी प्राणी जीव कहलाता है, सिद्ध नहीं क्योंकि सिद्धों में

प्राणधारण रूप व्युत्पत्ति निमित्त असंभव है।
अतति - सातत्त्येन गच्छति तान् तान् पर्यायान् इति आत्मा। यह व्युत्पत्ति ज्ञानादि पर्याया होने से सिद्धों में घटती है अत: उन्हें आत्मा कह सकते हैं।

★ इन ७ नयों की विचारणा अनुयोग द्वारों में प्रस्थक और वसति दृष्टांत से की गई है। वह शिष्य जन के अनुग्रह के लिए लेश से कही जाती है।

प्रस्थक दृष्टांत - कोई पुरुष परशु लेकर वन में गया। उसे जाता देखकर किसी ने पूछा - आप कहाँ जाते हो? वह नैगम नय के अभिप्राय से कहता है - प्रस्थक लेने। क्योंकि इस नय से प्रस्थक के लिए जो काष्ठ, वह भी कारण में कार्य के उपचार से प्रस्थक कहा जाता है। काष्ठ काटते हुए, वापस आते हुए, काष्ठ छीलते हुए वि. कोई उसे पूछे कि क्या काट रहे हो, ला रहे हो, छील रहे हो वि.? तो वह भी यही कहेगा - प्रस्थक काट रहा हूँ, ला रहा हूँ, छील रहा हूँ। इस प्रकार नामांकित प्रस्थक बने तब तक समझना। जो नामांकित प्रस्थक को प्रस्थक कहता विशुद्ध नैगम, अन्य अविशुद्ध नैगम नय।
इसी प्रकार व्यवहार नय भी जानना क्योंकि वह भी लोकव्यवहार में तत्पर होने से नैगम की तरह विचित्र है।
संग्रह नय कहेगा - जो धान्य मापने के लिए धान्य से भरा हुआ है, वही प्रस्थक है शेष नहीं क्योंकि शेष तो धान्य मापने के व्यापार से रहित है। तथा जगत में जो भी प्रस्थक धान्य मापने के लिए व्यापृत हैं वे सभी एक ही हैं क्योंकि प्रस्थकत्व एक ही है।
ऋजुसूत्र नय कहेगा - जो वर्तमान काल में स्वयं का प्रस्थक मापने का व्यापार करता है वह ही प्रस्थक है, अतीत भी नहीं, अनागत भी नहीं, परकीय भी नहीं तथा उस प्रस्थक से मपा हुआ धान्य भी प्रस्थक है।
तीन शब्द नयों का मत - जो प्रस्थक शब्द के वाच्य अर्थ के ज्ञान वाला है, वह प्रस्थक है, काष्ठमय नहीं क्योंकि प्रस्थक प्रमाण है। जिससे वस्तु का ज्ञान हो वह प्रमाण। अत: वह तो ज्ञानरूप है, ज्ञान तो आत्मा से अभिन्न है अत: ज्ञान काष्ठ में कैसे रहे?

प्र. काष्ठमय प्रस्थकादि भी वस्तुज्ञान में हेतु होने से प्रमाण है।
उ. (शब्दनय-) उनमें परिच्छेद के हेतुत्व का अयोग है क्योंकि हेतु उसे कहा जाता है जिसके होने पर कार्य अवश्य हो, जिसके न होने पर कार्य भी न हो। काष्ठमय प्रस्थक होने पर अवश्य ज्ञान नहीं होता, नालिकेर द्वीप से आए हुए मनुष्य को कोई बुद्धिमान या अतिशयज्ञानी को प्रस्थकादि न होने पर भी ज्ञान हो जाता है कि यह राशि प्रस्थक प्रमाण है।
यदि निमित्त मात्र होने से प्रस्थक को कारण मानोगे तो अतिप्रसंग होगा। जितने भी निमित्त कारण हैं आकाश-काल-दिग् आदि सभी प्रमाण हो जाएँगे।

वसति दृष्टांत — कोई पुरुष किसी के द्वारा पूछा गया - आप कहाँ रहते हो? लोक में, उसमें भी कहाँ? तिर्यग्लोक में, उसमें भी कहाँ? जंबूद्वीप में... भरतक्षेत्र ... दक्षिणभरत... भृगुकच्छ नगर... देवदत्त के घर में... गर्भगृह में... शय्या पर।
नैगम नय के अभिप्राय से ये सभी उत्तर होंगे।
इसी प्रकार व्यवहार नय भी।
संग्रह नय - शय्या पर रहता है इस प्रकार ही ज्ञान होता है क्योंकि अन्यत्र तो रहने की क्रिया का अभाव ही है। जो भी शय्या में रहने की क्रिया से युक्त हैं, वे सभी एक ही हैं।
ऋजुसूत्र नय - जिन आकाश प्रदेशों में वह अवगाढ है, उनमें वह रहता है, शय्या में नहीं क्योंकि शय्या के अनुगत आकाश प्रदेश शय्या के अणुओं से ही व्याप्त हैं।
शब्द नय - रहना यानि वर्तना। वर्तना तो सभी पदार्थ की स्वस्वरूप में ही होती है जैसे घर का स्वरूप घर में ही रहता है, भूतल या परादि अन्य में नहीं। इसी प्रकार देवदत्त भी स्व स्वरूप में ही रहता है, वह विलक्षण स्वरूप वाले आकाश में कैसे रहेगा?

प्रदेश दृष्टांत - नैगम नय कहता है - जगत में 6 के प्रदेश हैं धर्मास्तिकाय का, अधर्मास्तिकाय का, आकाश का, जीव का, स्कंध का, स्कंध में रहे एक देश का। ये प्रदेश सामान्य विवक्षा से एक है, विशेष से अनेक है।
संग्रह - 5 के प्रदेश हैं क्योंकि स्कंध और स्कंधगत एक देश के प्रदेश तो एक ही है। स्कंध

और देश भिन्न नहीं होते। तथा धर्मादि के प्रदेश सभी एक ही हैं, सामान्य होने से।

व्यवहार नय - आप जो कहते हो कि इ के प्रदेश हैं वह गलत है क्योंकि शब्दार्थ घटता नहीं है। जैसे इ गोष्ठिकों का कुछ हिरण्यादि साधारण हो वैसे यदि धर्मादि इ के प्रदेश साधारण होंगे। अतः 'इ. के प्रदेश हैं' ऐसा कहना चाहिए।

ऋजुसूत्र - 'इ. के प्रदेश' ऐसा बोलने पर भी अतिप्रसंग दोष है क्योंकि जो जो प्रदेश हैं, वह वह इ. का होगा। तथा ऐसे 1-1 प्रदेश इ. का होने से इ. के प्रदेश की आपत्ति होगी। अतः ऐसा कहना चाहिए 'भाज्यः प्रदेशः' - स्याद् धर्मास्तिकाय, स्याद्धर्मास्तिकाय, स्याद्आकाशास्तिकाय...

शब्द नय - यदि भाज्यः प्रदेशः' ऐसा बोलोगे तो स्यात् पद होने पर नियत धर्मादि के अनुगत प्रदेश के स्वरूप का अवधारण असंभव होने से धर्मास्तिकाय का प्रदेश भी ~~स्यात्~~ अधर्मास्तिकायप्रदेश होगा। अतः ऐसा कहना चाहिए - धर्मास्तिकाय प्रदेश है, प्रदेश धर्मास्तिकाय है...। इसका भावार्थ - जो देशी (देश वाला, द्रव्य) है वही देश/प्रदेश है क्योंकि देश-प्रदेश और देशी अभिन्न है। देश देशी से भिन्न होने के लिए समर्थ नहीं है। यदि भेद मानो तो उसका यह देश है, ऐसे संबंध की अनुपपत्ति होगी। संबंध की अनुपपत्ति होने पर अभिन्न मानना पड़ेगा। अतः जो देश है वही देशी है। इस प्रकार सामानाधिकरण्य सिद्ध हुआ।

यह सामानाधिकरण्य समभिरूढ भी मानता है।

एवंभूत नय - वस्तु का देश/प्रदेश है नहीं है क्योंकि देश/प्रदेश वस्तु से भिन्न होते हैं या अभिन्न? यदि भिन्न मानो तो 'यह उसका है' ऐसा संबंध नहीं होगा यदि अभिन्न मानो तो दोनों एक ही होंगे। अतः देश/प्रदेश शब्द परमार्थतः धर्मादि के ही प्रतिपादक हैं। एक ही वस्तु में एक काल में घट-कुट शब्द एक पर्यायवाची होने से उच्चरित नहीं किए जैसे जाते क्योंकि एक शब्द से अर्थ का प्रतिपादन होने पर दूसरे का प्रयोग निरर्थक है। ऐसे ही यहाँ भी धर्मादि रूप वस्तु में देश/प्रदेश शब्द और धर्मास्तिकायादि शब्द एककाल में बोलने के योग्य नहीं है। इसलिए धर्मास्तिकाय प्रदेशादि वचन सभी उपयुक्त है।

जो नोशब्द एकदेश वचन वाला है, वह भी इस नय के मत से सर्वथा अनुपपन्न है। क्योंकि उसमें भी उक्त दोष का अनतिक्रम होता है। नोशब्द संपूर्ण वस्तु को कहता है या एक देश? यदि संपूर्ण कहता है तो उसका प्रयोग निरर्थक है क्योंकि धर्मादि

-काय

पद से ही कथन हो जाता है। यदि एकदेश तो वस्तु का देश होता ही नहीं है। जो नीलोत्पलादि शब्द हैं वे भी इस नय के मत से सर्वथा अनुपपन्न हैं क्योंकि सभी वस्तु अखंड है, गुण पर्याय देश प्रदेश कुछ नहीं है अतः दो शब्द वाचना निरर्थक है।

इन ७ नयों में प्रथम ५ अर्थनय हैं क्योंकि वे मुख्यवृत्ति से जीवादि अर्थ का आश्रय करते हैं, शेष ३ तो शब्द नय हैं क्योंकि वे शब्द से ही अर्थ भेद मानते हैं।

अव. इस प्रकार नय कहे गए। अब उनके भेद बताते हैं -

गा.759 मूलभेद नैगमादि ७ हैं। प्रत्येक के १००-१०० भेद होने से ७०० भेद होते हैं। मूलभेद ६ सामान्यग्राही नैगम संग्रह में और विशेषग्राही व्यवहार में अन्तर्भूत होने से।
" ५ संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र शब्द।
" २ द्रव्यास्तिक (पहले ५) - पर्यायास्तिक (अंतिम ३)।
अथवा जितने वचनपथ हैं उतने असंख्य भेद मानना।

अव. इन भेदों से क्या प्रयोजन है? - (चूर्णि में अवतरणिका)

गा.760 ★ इन नयों से दृष्टिवाद में सभी वस्तुओं की प्ररूपणा और सूत्रार्थकथन होता है।

प्र. सूत्रार्थ का उल्लंघन नहीं करने से वस्तुओं का समुच्चय अनर्थक है।

उ. नहीं क्योंकि सूत्र में बद्ध का ही सूत्रार्थपन से विवक्षा करी है। उसके सिवा भी वस्तु संभव है। सभी अभिलाप्य वस्तु सूत्र में निबद्ध नहीं है, मात्र अनंतवां भाग ही है अतः सूत्रार्थ सिवा भी वस्तु संभव है। (टीप्पणक)

★ कालिकश्रुत में नयों से व्याख्या अवश्य नहीं की जाती किंतु श्रोता की अपेक्षा प्रथम ३ नय से यहाँ अधिकार है। (नैगम संग्रह व्यवहार)* (चूर्णि Pg. No. 65)

प्र. ३ नय ही क्यों लिए??

उ. क्योंकि ३ नयों से ही लोक व्यवहार समाप्त हो जाता है।

प्र. श्रोता की अपेक्षा ३ नय से अधिकार क्यों?

उ. श्रोता की बुद्धि को परिकर्मित करने के लिए। ३ नय से बुद्धि परिकर्मित होने से वह

दृष्टिवाद के योग्य बन सके। नहीं तो वह दृष्टिवाद के योग्य नहीं बनेगा।

अव. परिकर्म भी नयों द्वारा वहाँ किया जाए जहाँ नयों का अवकाश हो। कालिकश्रुत
गा.761 में नयों का अवकाश हीन होने से कैसे 3 नय लाए? —
जिनमत में कोई भी सूत्र-अर्थ नय रहित नहीं है। अतः कालिक श्रुत में भी न
तो है ही। सभी नय का प्रतिषेध शिष्यों की विशिष्टबुद्धि के अभाव की अपेक्षा
कहा है। यदि कोई निर्मल बुद्धि वाला हो तो सूरि समस्त नय कहे। यदि कोई
3 नय के योग्य न हो तो 2 नय कहे। वह भी न हो तो 1 एक नय कहे।
वह न होने पर मात्र सूत्रार्थ कहे।

अव. नयद्वार समाप्त। 5. समवतार द्वार (मूलद्वारगा. देखें) —
~~गा.762~~ नयों का कहाँ समवतार होता है और कहाँ अनवतार, वह कहते हैं —
गा.762 यहाँ मूढ नय वाले कालिकश्रुत में नय का समवतार नहीं होता। अपृथक्त्व
में समवतार था, पृथक्त्व में समवतार नहीं है।

★ मूढनय- जिस श्रुत में नयों का विभागीकरण न हो।

★ कालिकश्रुत- जो श्रुत पहली और अंतिम पोरसी रूप काल में कालग्रहण पूर्वक
पढ़े जाए, वह।
'वर्षाकालेभ्यः' सूत्र से इकण् प्रत्यय।
अर्थात् ऐसे कालिक श्रुत में नय का समवतार नहीं होता अर्थात् प्रत्येक
पद में नय नहीं कहे जाते।

★ अपृथक्त्व- जब प्रत्येक ग्रंथ में चरणकरणानुयोग-गणितानुयोग- धर्मकथानुयोग
द्रव्यानुयोग चारों अनुयोग एक साथ चलते थे तब नयों का समवतार
होता था।

★ पृथक्त्व यानि जब चारों अनुयोग के ग्रंथ विभाग से स्वतंत्र बनने लगे तब
नय का समवतार नहीं होता।

* यहाँ 3 नय - द्रव्यास्तिक नय नैगम, पर्यायास्तिक नय एवंभूत, द्रव्यपर्यायास्तिक मध्यम (चूर्णि)

अत. कितने काल तक अपृथक्त्व था ? कहाँ से पृथक्त्व हुआ -
गा. 763 आर्यवज्र स्वामी तक सभी श्रुत ज्ञान का अपृथक्त्व था क्योंकि तब साधु तीक्ष्ण ~~प्रज्ञ~~ प्रज्ञा वाले थे। आर्य रक्षित सूरि से पृथक्त्व हुआ।

अत. वज्रस्वामी कौन थे ? -
गा. 764 वज्रस्वामी का पूर्वभव -
वज्रस्वामी पूर्वभव में शक्र के वैश्रमण कुबेर देव के सामानिक देव थे। एकदा भ. महावीर स्वामी पृष्ठचंपा पधारे x वहाँ शाल राजा, महाशाल युवराज, बहन यशोमती, बहनोई पिठर, भाणेज गागली x शाल भ. की देशना सुनकर दीक्षा के लिए तैयार हुआ x महाशाल को राज्य लेने को कहा x महाशाल ने कहा मैं भी दीक्षा लूँगा x गागली को कांपिल्य पुर से बुलाकर राज्य दिया x दीक्षित हुए x यशोमती श्राविका बनी x दोनों ।। अंग पढ़े x भ. राजगृही पधारे x वहाँ से चंपा तरफ विहार किया x दोनों ने पूछा - हम पृष्ठ चंपा जाएँ x भ. ने गौतम स्वामी को साथ में भेजा x देशना हुई x गागली यशोमती पिठर ने दीक्षा ली x गौतम स्वामी उन्हें लेकर चंपा तरफ निकले x रास्ते में शाल-महाशाल को 'अहो! इन्हें संसार से उतारा' ऐसे शुभ ध्यान से केवलज्ञान हुआ x गागली वि. तीनों को 'इन्होंने पहले राज्य दिया, फिर धर्म देकर संसार से छुड़ाया' ऐसे शुभ ध्यान से केवलज्ञान हुआ x चंपा में भ. को प्रदक्षिणा कर केवली पर्षदा में गए x गौतम स्वामी के रोकने पर भ. ने कहा केवली की आशातना मत कर।

गौतम स्वामी की अष्टापद यात्रा
गौतम स्वामी के पहुँचने के पहले भ. ने कहा था - जो मनुष्य अष्टापद की यात्रा करता है, वह उसी भव में मोक्ष में जाता है x देव परस्पर चर्चा कर रहे थे x देवों की बात सुनकर गौतम स्वामी भ. की आज्ञा लेकर निकले x वह 3 तापस थे, तीनों को 500-500 शिष्य थे - (a) कौडिन्य - 1-1 उपवास कर सचित्त कंद खाते, पहली मेखला पर थे। (b) ~~दिन्न~~ दत्त - 2-2 उपवास कर गिरे हुए पीले पत्ते खाते, दूसरी मेखला पर थे। (c) सेवाल - 3-3 उपवास कर स्वयं अचित्त हुई सेवाल को खाते, तीसरी मेखला पर थे x वे गौतम स्वामी को देखकर हँसते हैं कि यह स्थूल शरीर वाला कैसे चढ़ेगा ? x गौतम स्वामी जंघाचारण लब्धि

से मकड़ी के जाले को पकड़कर चढ़ गए x गौतम स्वामी चैत्यों को वंदन कर ईशान कोण में अशोक वृक्ष नीचे रात्रि रुके।

शक्र का लोकपाल वैश्रमण कुबेर देव अष्टापद पर चैत्यों को वंदन करने आया x फिर गौतमस्वामी को वंदता है x देशना में गौ.स्वा. साधु के अंत-प्रांत आहार की बात करते है वैश्रमण ने सोचा- इनका तो इतना सुकुमार शरीर है जितना देवों का भी नहीं फिर अंत प्रांत आहार कैसे? x वैश्रमण के विचार को जानकर गौ.स्वा. ने पुंडरिक अध्ययन कहा-

पुंडरिक-कंडरिक चरित्र

पुष्कलावती विजय x पुंडरिकिणी नगरी x नलिनगुल्म उद्यान x महापद्म राजा, पद्मावती रानी, पुंडरीक-कंडरीक पुत्र x उद्यान में साधु आए x धर्म सुनकर राजा ने दीक्षा ली 14 पूर्व पढ़े x मासिक संलेखना पूर्वक सिद्ध हुए x पुनः साधु आए x पुंडरीक श्रावक बना x कंडरीक बहुत आग्रह कर दीक्षा ली x 11 अंग पढ़े, बहुत तप किए x दाह रोग हुआ x साधु पुनः नगर में आए x राजा पुंडरीक ने चिकित्सा की विनंती की x रोग ठीक हुआ किंतु आसक्ति से विहार नहीं करते x पुंडरीक ने समझाया x लज्जा से विहार किया x कुछ काल बाद अकेले पुनः वहाँ आगए x पुंडरीक ने उन्हें राज्य देकर दीक्षा ली x कंडरीक ने अति भोजन किया x अत्यंत आसक्ति से मरकर 7वीं नरक गया x पुंडरीक को ठंडे और विरस आहार से वेदना हुई x आलोचित प्रतिक्रांत मरकर सर्वार्थसिद्ध में 33 सा. आयु वाला देव बना।

वैश्रमण को गौ.स्वा. ने कहा- अतः दुर्बलपन या बलवानपन को ग्रहण न कर क्योंकि कंडरीक दुर्बलपन से मरकर 7वी नरक और पुंडरीक पुष्ट शरीर वाला भी सर्वार्थ सिद्ध में गया, अतः ध्यान ही मुख्य कारण है x वैश्रमण को आश्चर्य हुआ कि अहो! गौ.स्वा. ने मन की बात जान ली।
दूसरे दिन गौ.स्वा. नीचे आए x 1500 तापस ने दीक्षा ली x पारणे में गौ.स्वा. ने पूछा- क्या लाऊँ? तापस- खीर x गौ.स्वा. पात्रा भरकर खीर लाए x अक्षीणमहानस लब्धि से सबको पारणा कराया स्वयं ने वापरा x सेवाल वि. 500 को लब्धि देखकर, दत्त वि. 500 को भ. का समवसरण देखकर कौडिन्य वि. 500 को भ. को देखकर केवलज्ञान हुआ x केवली पर्षदा गए x गौ.स्वा. के रोकने पर भ. ने कहा- गौतम! केवली की आशातना मत कर x गौ.स्वा. ने मिच्छामि दुक्कडं मांगा

वज्रस्वामी के जीव को सम्यग्दर्शन

अष्टापद पर वैश्रमण देव का एक सामानिक देव भी था, उसने पुंडरीक अध्ययन 500 बार स्वाध्याय किया x उसे सम्यग्दर्शन हुआ xx कुछ आचार्य- वह जृंभकदेव था।

गौ.स्वा.को बहुत अधृति हुई x भ. ने कहा- देवों का वचन ग्राह्य है या जिनेश्वर का? x गौ.स्वा.- जिनेश्वर का x भ.- तो अधृति क्यों ~~करता~~ करता है x भ. पशिष्य का दृष्टांत देते हैं-

(a) सुंबकर - सुंब (तृणविशेष) की चटाई, अल्प रंग।

(b) विदलकर - बांस " " , गाढ रंग।

(c) चर्मकर - चमड़े की चटाई, गाढ़तर रंग।

(d) कंबलकर - ऊनी चटाई, गाढ़तम रंग।

तू कंबलकर समान है, मेरे प्रति तेरा राग छूटता नहीं है।

फिर भ. द्रुमपत्रक अध्ययन कहते हैं (उत्तराध्ययन का 10वां अध्ययन)।

वज्रस्वामी

~~वह देव च्यवकर~~ अंवती देश x तुंबवन संनिवेश x धनगिरी सेठपुत्र x वह दीक्षा की इच्छावाला x माता-पिता रोकते हैं x जहाँ उसकी सगाई करते हैं वहाँ वह विपरिणाम करता है कि मैं दीक्षा लेने वाला हूँ x धनपाल सेठ की सुनंदा पुत्री ने कहा- मैं शादी करूँगी x उसके भाई आर्यसमित ने पहले दीक्षा ली थी x सुनंदा के गर्भ में वह देव उत्पन्न हुआ x धनगिरी ने सिंहगिरि के पास दीक्षा ली x जब वह पुत्र 9 मास का हुआ तब लोगों से सुना कि पिता ने दीक्षा ली है x सोचते हुए उसे जातिस्मरण हुआ x रात दिन रोता है जिससे माता निर्वेद पामे x 6 माह बीते xx

आचार्य पधारे x आर्यसमित और धनगिरि ने स्वजन के वहाँ जाने के लिए पूछा x आचार्य- तुझे सचित्त/अचित्त जो मिले, ले आना x महिलाओं ने सुनंदा को कहा- बालक को सौंप दे तो उन्हें वापस आना पड़ेगा x सुनंदा ने दिया x धनगिरि- तू पश्चात्ताप मत करना x साक्षी रखकर चोलपट्टे से झोली बनाकर ले गए x रोना बंद किया x आचार्य ने हाथ फैलाया x झोली हाथ में आते हाथ भूमि पर गया x आ.- वज्र जैसी वजनदार वस्तु लाए हो x बालक देखा और कहा- यह प्रवचन का आधार बनेगा x वज्र नाम रखा x साध्वीजी को दिया x इन्होंने शय्यातर कुल में दिया x साधुओं ने विहार किया, तब सुनंदा ने शय्यातरी से बालक मांगा x इन्होंने मना किया x साधु आए तब राजकुल में case किया x सुनंदा खिलौने लाई x राजा- जहाँ बालक जाए, उसका x राजा ने कहा पहले पुरुष बुलाए किंतु नगरजनों ने कहा उनका परिचित है तथा माता दुष्करकारिणी होती है अतः पहले माता x माता ने बुलाया, वह नहीं गया x धनगिरि ने एक बार ओघा दिखाया तो लिया x माता ने भी दीक्षा ली xx

गा.765 जब उसने स्तनपान करना बंद किया तब दीक्षा दी x साध्वी के पास ही रहता है x 11 अंग सुनने से पार किए x पदानुसारी x 8 साल की वय में साधु के उपाश्रय में आए x आचार्य उज्जयिनी गए x

वहाँ वर्षा बरसती x तिर्यक्‌जृंभक देव (पूर्वभव के मित्र) परीक्षा के लिए वणिक् का रूप कर आए x रसोई बनाते हैं x आमंत्रण देते हैं x वज्र ने देखा थोड़ी बारिश है x वापस गए x बंद होने पर आमंत्रण x वज्र ने जाकर उपयोग दिया द्रव्य से फल से बनी खाद्य विशेष, क्षेत्र से उज्जयिनी, काल से पहला बारिश, भाव से पैर धरती पर पड़ते नहीं पलक झपकती नहीं x देव जानकर वापस गए x देवों ने वैक्रियविद्या दी xx

गा.766 पुनः ज्येष्ठमास में संज्ञाभूमि गए हुए वज्रस्वामी को घेवर की विनंती की x उपयोग देने पर देव जान देवों ने आकाशगामिनी विद्या दी x जो साधु पूर्व पढ़ते थे उनका सुनकर पूर्व याद हो गए x जब पढ़े तो आते हुए भी रटने बैठ गए x उस समय भी अन्य को सुनते हुए वह सब याद कर लिया x आ. स्थंडिल गए x वज्रस्वामी वसतिपाल रहे x वीटिएँ जमाकर वाचना देते हैं x आ. ने आवाज सुन सोचा - साधु जल्दी आ गए लगते हैं x सुनते हुए बाहर रहे x जाना वज्र है x निसीहि कहा x वज्रस्वामी वीटिएँ तुरंत जगह पर रखे x बाहर जाकर दंड लिया, पैर धोए x आ. ने सोचा - साधु इसका पराभव न करे इसलिए मैं बताता हूँ x रात को कहा मैं अमुक गाँव जाता हूँ, 2-3 दिन रहूँगा x जोगवालों ने पूछा - कौन वाचनाचार्य x आ. - वज्र x सबने तहत्ति कहा x आ. गए x साधुओं ने वज्र को कालनिवेदनादि किया x आसन पाथरा x सबने वंदन किए x पाठ चालू हुआ x जो मंदमेधावी थे, उन्हें भी जल्दी से समझा गया x सभी आश्चर्यचकि हुए x भूलने पर कोई आलापक पुनः पूछने पर वज्र ने सब कहा x सबने सोचा - आ. कुछ दि वहाँ रहे तो यह श्रुतस्कंध जल्दी खत्म हो, जो आ. के पास बहुत काल तक चलता है वह एक पोरसी में करा देते हैं x आ. पधारे x पूछा - स्वाध्याय बराबर हुआ? साधुओं ने कहा - ये ही हमारे वाचनाचार्य हों x आ. - ठीक है किंतु इसने सब सुनकर याद किया है, अतः यह कल्प नहीं है, इसको (*) उत्सारकल्प करना चाहिए x आ. सूत्र - अर्थ एकसाथ देते हैं x जो अर्थ आ. को शंकित थे, वे वज्रस्वामी ने खोले x जितना दृष्टिवाद उनके पास था उतना लिया x विहार क दशपुर नगर गए xx

* जिसमें एक ही दिन में बहुत दिनों के योग्य सूत्र - अर्थ दिए जाते हैं। (टीप्पणके)

गा.767 उज्जयिनी में भद्रगुप्तसूरि आ. हैं x उनके पास संथारक के साथ गए x आ. ने स्वप्न देखा - एक सिंहपुत्र ने मेरा खीर से भरा पात्र पीया और चाट भी लिया x शिष्यों को कहा कि कोई सूत्र-अर्थ लेने आएगा x वज्रस्वामी ने 10 पूर्व पढ़े x जहाँ उद्देश किया हो वहीं अनुज्ञा कर

चाहिए अतः उज्जयिनी आकर अनुज्ञा ली × अनुज्ञा में देवों ने दिव्य-चूर्ण और पुष्प बरसाए ××

सिंहगिरि आ. भक्त प्रत्याख्यान कर देवलोक गए × ५०० साधु के साथ वज्रस्वामी विचरते हैं × इनके कीर्तिप्रशंसा गुणपोषते हैं ×

गा. 768 पाटलिपुत्र × धन सेठ × रूपवती पुत्री × उसने साध्वी के मुख से वज्रस्वामी के गुण सुनकर इनसे शादी का निश्चय किया × वज्रस्वामी पधारे × राजा वि. सब आए × देशना हुई × वज्रस्वामी क्षीराश्रव लब्धि वाले थे × राजा ने रानियों को कहा × रानी भी आई × सेठ भी पुत्री के साथ करोड़ों धन लेकर आया × देशना हुई × लोगों ने शब्द की प्रशंसा की किंतु विचारा कि यदि रूप भी होता तो बहुत अच्छा × ~~इ~~ आ. समझकर लाख पत्र वाला कमल विकुर्व कर विराजे × सेठ ने निमंत्रण दिया × वज्रस्वामी ने विषयों की निंदा कर उसे दीक्षा दी ××

गा. 769 उन्होंने महापरिज्ञा अध्ययन से आकाशगामिनी विद्या का उद्धरण किया। वे १० पूर्वधरों में अंतिम थे।

★ आरात् सर्वहेयधर्मेभ्यो यातः-प्राप्तः सर्वैः ~~रुपा~~ उपादेयगुणैः इति आर्यः ⇒ सर्व अहेय धर्म यानि उपादेय गुणों ~~से~~ के नजदीक को प्राप्त, वह आर्य।

आराद् यातः सर्वहेयधर्मेभ्यः इति सार्यः ⇒ सभी हेय धर्मों से दूर गए हुए।

(हरिभद्रीय वृत्ति)

गा. 770 इस आकाशगामिनी विद्या से जंबूद्वीप में भ्रमण कर सकते हैं और मानुषोत्तर पर्वत पर जाकर रह सकते हैं।

गा. 771 किंतु यह विद्या ~~मैं~~ मेरे द्वारा धारण करने योग्य है किसी को देने योग्य नहीं है क्योंकि अब मनुष्य अल्पऋद्धि वाले होंगे। (ऐसा वज्रस्वामी कहते हैं)

~~वे विद्या से पू~~ वे विहार करते हुए पूर्व देश से उत्तरापथ आए × दुर्भिक्ष हुआ × संघ ने बचाने की विनंती की × विद्या से पट विकुर्वा × संघ उस पर चढ़कर उड़ रहा था × तब शय्यातर गाय चराने गया था × उड़ते देखकर उसने स्वयं की चोटी काटकर कहा- मैं भी आपका साधर्मिक हूँ × उसे भी लिया × पुरि नगरी पहुँचे × वहाँ सुभिक्ष था × बहुत

श्रावक थे x राजा बौद्ध था x जैनों और बौद्धों में विरोध था x फूल खरीदने की स्पर्द्धा थी
जैन रोज अच्छे-अच्छे फूल खरीद लेते x राजा ने पर्युषणा में पुष्प जैनों को बंद किए
वज्रस्वामी को कहा x

गा. 772 वे माहेश्वरी नगर गए x वहाँ हुताशन नामक वाणव्यंतर का मंदिर था x उसके बगीचे में रोज
कुंभ प्रमाण फूल उगते थे x तडित् नामक माली वज्रस्वामी के पिता का मित्र था x उसने पूछा
किसलिए आए? x वज्रस्वा.- पुष्प के लिए x तडित्- आपने उपकार किया x वज्रस्वामी- आप गूंथो
तब तक मैं वापस आता हूँ x लघु हिमवंत पर्वत पर लक्ष्मी देवी के पास गए x उसने चैत्य की पूजा
लिए कमल तोड़ा था x वह उसने वज्रस्वामी को दिया x वज्रस्वामी माहेश्वरी आए x विमान विकुर्वा
कुंभ प्रमाण पुष्प लिए और जृंभक देवों के साथ गीत-वाजिंत्र के साथ आए x वज्रस्वामी मह
पद्म के डीरे में रहे x बौद्ध- हमारे देव आ रहे हैं x किंतु देव तो बौद्ध को छोड़कर जैन देरासर गए
वहाँ महोत्सव किया x राजा श्रावक बना।

गा. 773 इस प्रकार वे नय विशारद थे। अपृथक्त्व होने पर एक अनुयोग प्रहार को कहते थे।
पृथक्त्व करने पर वे अर्थ विच्छेद हुए।

अव. जिसने पृथक्त्व किया, उसे कहते हैं-
गा. 774-6 दशपुर नगर x सोमदेव ब्राह्मण x रुद्रसोमा पत्नी है, जैन x 2 पुत्र- रक्षित और फल्गुरक्षि

दशपुर नगरोत्पत्ति

कुमारनंदी कथा

चंपा नगरी x कुमारनंदी सुनार, स्त्रीलोलुप x 500 सोनामुहर देकर शादी करता है x 500 पत्नी
ईर्ष्यालु ऐसा वह एकस्तंभ वाला महल कराकर उनके साथ रहता है x उसका मित्र नाग
जैनश्रावक x एकदा पंचशैलद्वीप पर रहने वाली वाणव्यंतरीआँ नंदीश्वर द्वीप की यात्रा के
लिए निकली x उनका पति विद्युन्माली पंचशैलद्वीप का अधिपति x वह च्यवा x उन्होंने
सोचा- किसी को फँसाए, जो हमारा पति बने x फिरते हुए सुनार को देखकर उसे स्वयं का रू
दिखाया x उसने पूछा- कौन हो तुम? x देवी- देवी हैं, हमारा ~~काम~~ काम हो तो पंचशैल द्वी
आना x उसने सोनामहोर देकर पटह बजवाया- जो पंचशैल ले जाएगा उसे 1 करोड़ मुहर दूँ
एक वृद्ध ने पटह छूआ x वाहन तैयार किया x खाने-पीने का सामान भरा x धन स्वयं के पु
को दिलाया x यात्रा पर निकले x दूर समुद्र में पहुँचने पर वृद्ध ने सुनार को पूछा- कुछ दिख
रहा है? x कुछ काला काला x हाँ, वह पर्वत के किनारे वटवृक्ष है, वाहन उसके नीचे जाए

तू उस पर चढ़ जाना x वृक्ष पर पंचशैल द्वीप से भारंड पक्षी आते हैं, उनमें एक शरीर में 2 जीभ होने से युगल्य कहलाते हैं, उनके ऊपर है, जब वे पक्षी सो जाएँ तब बीच वाले पैर पर कपड़े के टुकड़े से खुद को बांध देना, वे तुझे ले जाएँगे x यदि वृक्ष पर नहीं लगा तो वाहन आगे पानी की भ्रमरी में जाएगा, जिससे हम मर जाएँगे x सुनार द्वीप पहुँच गया x स्त्रीयों ने देखा x उसे स्वयं की ऋद्धि दिखाकर कहा इस शरीर से हम तुझे नहीं भोग सकते, तू निदान कर अग्नि में मर x सुनार - यहाँ से कैसे जाऊँ? x देवी ने उठाकर उद्यान में छोड़ दिया x लोगों को उसने पंचशैल द्वीप पर जो देखा, वह बताया x चिंता तैयार की x नागील ने रोका किंतु मरकर पंचशैल द्वीप का स्वामी बना x नागील को वैराग्य हुआ, दीक्षा ली मरकर अच्युत कल्प में देव बना x अवधि से सुनार को देखा x

एकदा नंदीश्वर यात्रा में ढोल बजाता हुआ गया x नागील देव ने उसे पूछा - मुझे जानता है? x उसने कहा - शत्रुंजयादि इंद्र को तो सब जानते हैं x नागील देव ने श्रावक का रूप दिखाकर यात्रा कराया x संवेग को प्राप्त कर उसने पूछा - अभी मैं क्या करूँ? x नागील देव - वर्धमान स्वामी की प्रतिमा कर जिससे तुझे सम्यक्त्व होगा x उसने महाहिमवंत पर्वत से गोशीर्ष चंदन की प्रतिमा बनाकर पेटी में रखी x भरत क्षेत्र के समुद्र में उत्पात से एक जहाज को 6 माह तक घूमते हुए देखा x उत्पात शांत किया x पेटी दी और कहा - इसमें जगत् के देवाधिदेव की प्रतिमा है x जहाज वीतभय नगर पहुँचा xx

उदायन राजा

वीतभय नगर x उदायन राजा तापस भक्त x पद्मावती देवी जैन x व्यापारियों ने उसे कहा x कुब्जा से इष्ट देव का नाम बोलकर पेटी खोलने की कोशिश की किंतु नहीं खुली x रानी ने श्री का नाम बोलकर पेटी खोली x ~~सच्चा जैन बना~~ x अंतःपुर में चैत्य बनाकर प्रतिष्ठा की x पद्मावती त्रिसंध्या पूजा करती है x एकदा रानी नच्चती है x राजा वीणा बजाता है x राजा को रानी का सिर दिखता नहीं है x उसे अधृति हुई x वीणा हाथ से गिर गई x गुस्सा हुई रानी को उसने कारण बताया x रानी - मैंने तो बहुत काल तक श्रावकत्व पाला है x एक दिन उसने दासी को कहा - वस्त्र लाओ x दासी ने सफेद वस्त्र दिए किंतु अल्पायु होने के कारण उसे लाल दिखे x उसने गुस्से में काँच मारा x दासी मर गई x उसने सोचा - मैंने व्रत खंडित किया x राजा - जो मुझे बोध देगी तो भक्त प्रत्याख्यान कर x भक्त प्रत्याख्यान कर देवलोक गई x

देवदत्ता दासी प्रतिमा की पूजा करती है x देव राजा को बोध देता है किंतु वह नहीं समझता x देव तापस का रूप कर अमृत फल लेकर आया x फल चखकर राजा के पूछने पर कहा - दूर आश्रम में ये फल हैं x वह गया x तापस उसे मारने दौड़ा x वह भागा x वन में साधु मिले x धर्म कहा x वह जैन हुआ x देव ने स्वयं का रूप दिखाया xx

गंधार देश के एक श्रावक ने सर्व जन्मभूमि को वंदना की x सुना-वैताढ्य पर सुवर्ण प्रतिमा है x उपवास कि
देव ने प्रतिमा के दर्शन कराए और सभी इच्छा पूरी करने वाली 100 गुटिका दी x वीतभय में गोशीर्षचंदन
प्रतिमा को वंदन करने आया x वहाँ रोगी हुआ x देवदत्ता ने सेवा की x तुष्ट होकर 100 गुटिका उसे दी और
दीक्षा ली x

एकदा देवदत्ता ने सोचा - मेरा सुवर्ण जैसा रूप हो x गुटिका से जात्यसुवर्ण जैसा वर्ण हुआ x वह सुवर्णगुलिका
नाम से प्रसिद्ध हुई x उसने सोचा - मैं भोग भोगूँ किंतु ये उदायन राजा मेरे पिता तुल्य हैं और अन्य राजा तो
इनके सेवक हैं अतः प्रद्योत मेरा पति हो xx गुटिका खाई x देवी ने प्रद्योत को उसका रूप कहा x उसने दासी
पास दूत भेजा x दासी - पहले तुझे देखूँगी x वह नलगिरि हाथी पर बैठकर रात में आया x दासी को देखकर रु
x दासी - यदि प्रतिमा लो तो मैं आऊँ x रात रहकर वापस आया x अन्य नकली प्रतिमा कराकर पुनः वीतभ
आकर प्रतिमा और दासी को लेकर भागा x नलगिरि हाथी ने मूत्र-पुरीष छोड़ x उसकी गंध से सभी हा
उन्मत्त हुए और उस दिशा में दौड़े x नलगिरि के पद दिखे x उदायन को कहा x दासी ले गया x उदा
प्रतिमा देखो x सेवक - प्रतिमा है x पूजा करते हुए पुष्प स्थान हुए अतः जाना कि नकली प्रतिमा है
प्रद्योत को दूत भेजा - दासी से मुझे काम नहीं है किंतु प्रतिमा दे x मना किया x जेठ माह में 10 राजा व
साथ चला x मरु देश में ~~पानी~~ प्यास से सभी मरने लगे x उदायन ने प्रभावती को याद किया x देव आया x 3
पुष्कर बनाए - अग्नि मध्यम पश्चिम x उज्जयिनी पहुँचा x प्रद्योत को कहा - लोगों को मारने से क्या?
और मेरा हाथी-घोड़ा-रथ से युद्ध हो x प्रद्योत - रथ से x वह रथ पर आया x प्रद्योत नलगिरि हाथी पर
उदायन - कपट करने वाला है तो भी आज नहीं बचेगा x रथ मंडली में गोल घुमाया x जहाँ जहाँ हाथी पैर
रखता है वहाँ वहाँ बाण मारता है x हाथी गिरा x प्रद्योत को बांधा x प्रतिमा उठी नहीं अतः उसे उज्जयि
में छोड़ा x लत्यार पर दासीपति लिखाया x निज नगर चला x बीच में चौमासा आया x स्थूल का किला
बनाकर रहे x पर्युषण में प्रद्योत को पूछा - क्या खाएगा? x उसने सोचा - मुझे मारेंगे x अतः रसोईए को पूछ
क्यों पूछता है? x रसोईया - आज राजा को उपवास है x प्रद्योत - मुझे भी उपवास है x उदायन को कहा तो
सोचा - भले वह धूर्त है किंतु मेरे पर्युषण शुद्ध न होंगे x अतः छोड़कर खमाया x लत्यार पर सुवर्ण पट्ट
जिससे अक्षर न दिखे x उसका देश दिया x तब से राजा पट्टबद्ध हुए, उसके पहले मुकुटबद्ध

चौमासा पूरा होने पर राजा गया x जो वणिक् आए थे, वे वहीं रहे x दशपुर नगर नाम पड़ा xx

आर्य रक्षितसूरि का 10 पूर्व अध्ययन

दशपुर x सोमदेव ब्राह्मण x रुद्रसोमा पत्नी x 2 पुत्र - रक्षित, फल्गुरक्षित x जितना पिता को आता था, उतना पढ़ा x फिर पाटली पुत्र गया x 14 विद्या पढ़ी x दशपुर आया x राजा ने स्वागत किया x उसका घर भी तोरणों से सुशोभित था x नगर जनों ने भेंट दी, घर गायों से भर गया x उसने सोचा - माता नहीं दिखती x घर में गया, पैर पड़े x माता मध्यस्थ रही x पूछने पर माता - संसार बढ़ाने वाले ज्ञान से मुझे कैसे तुष्टि हो? तू क्या दृष्टिवाद पढ़कर आया? x आर्यरक्षित - कहाँ है दृष्टिवाद? x माता - साधुओं के पास x उसने 'दृष्टिवाद' शब्द की व्युत्पत्ति की x कहा - कौन है उसे पढ़ानेवाले? x माता - मेरे पीयर में तोसलिपुत्र आचार्य x दूसरे दिन वह निकला x उसके पिता का मित्र अन्य गाँव से उसे मिलने आ रहा था x रास्ते में मिला x पूछा - तुम कौन हो? x आर्यरक्षित हूँ x उसने स्वागत किया और 9 इक्षु पूरे और 1 खंड भेंट दिया x रक्षित ने सोचा - मैं दृष्टिवाद के 9 अंग या अध्ययन पूरे ग्रहण करूँगा और 10वाँ थोड़ा x कहा - मैं शरीरचिंता के लिए जा रहा हूँ अतः ये इक्षु मेरी माता को देना और कहना कि मैं ही उसे पहले मिला हूँ x शुभ शुकन से माता तुष्ट हुई xx

पहुँचकर सोचा - कुछ आता तो नहीं है, अंदर कैसे जाऊँ अतः कोई श्रावक आएगा तब जाऊँगा x वहाँ ढड्ढर श्रावक ढड्ढर (बड़ी) आवाज वाला था x उसने निसीहि बोला, इरियावही वि. जोर से बोला x रक्षित सब धारणा करता है x उसी क्रम से गया x सभी साधु को वंदन किए x श्रावक को प्रणाम न करने से आचार्य समझे - अभिनव श्रावक है x पूछा - धर्म कैसे पाया? x आ. रक्षित - इस श्रावक से x साधुओं ने परिचय दिया - यह शय्यातरी का पुत्र है जिसका राजा ने स्वागत किया था x आ. - क्यों आए? x आ. रक्षित - दृष्टिवाद पढ़ने, पूरा वृत्तांत कहा x आ. - दीक्षा लेना पड़ेगी x उसने हाँ किया और कहा यहाँ सब मेरे रागी हैं अतः दूर जाएँ x अन्यत्र गए, दीक्षा ली x यह पहली शैक्षनिष्फेटिका थी xx
11 अंग पढ़े x जितना दृष्टिवाद तोसलिपुत्राचार्य के पास था, उतना लिया x

आर्यवज्रस्वामी के पास आने के लिए उज्जैन आए x वहाँ भद्रगुप्तसूरि मिले x उन्होंने कहा - मैंने संलेखना नहीं की है, तू मेरा निर्यामक बन जा x आर्यरक्षित ने स्वीकारा x काल करते हुए वे बोले - वज्रस्वामी के साथ मत रहना, अलग उपाश्रय में रहकर पढ़ना, जो उनके साथ एकरात्रि भी रहता है, वह उनके साथ ही मर जाता है x आ. र. ने स्वीकारा x कालधर्म के बाद वज्रस्वा. के पास गए x वज्रस्वा. ने भी खीर के पात्र वाला स्वप्न देखा किंतु उसमें थोड़ा बाकी रहा x उन्होंने उसका अर्थ उसी प्रकार विचारा x आ. रक्षित पहुँचे x पूछा - कहाँ से आए? x तोसलिपुत्राचार्य के पास से x वज्र. - तुम आ. रक्षित हो? x हाँ x स्वागत है, कहाँ ठहरे हो? x बाहर x बाहर रहकर पढ़ना शक्य नहीं है, क्या यह तुम नहीं समझते? x भद्रगुप्तसूरिम. ने मुझे बाहर ठहरने के लिए कहा था x वज्रस्वा. ने उपयोग देकर कहा - सुंदर! आचार्य निष्कारण नहीं बोलते x पढ़ाई शुरू की x जल्द ही 9 पूर्व पढ़े x 10वाँ शुरू हुआ तब वज्रस्वामी - पहले यविक पढ़, ये यविक 10वें पूर्व की भूमिका है x

थविक पढ़ने में सूक्ष्म और कठिन थे x आ.रक्षित ने 24 यविक पढ़े x तब उनके माता-पिता अधृति करने लगे कि यह तो वापस आया ही नहीं x उन्होंने फल्गुरक्षित को भेजा x उसने आकर कहा - यदि आप आओ तो सब दीक्षा लेंगे x आ.रक्षित - यदि वे दीक्षा लेंगे तो पहले तू दीक्षा ले x उसने दीक्षा उसे पढ़ाया x

आ.रक्षित थविकों में अत्यंत घूमने पर बोले - कितना बाकी है ? x वज्र. - बिंदु मात्र गया, समुद्र जितना बाकी है x रक्षित - मैं तो जाता हूँ, मेरा भाई बुलाने आया है x वज्र. - तू पढ़ x किंतु वे रोज-रोज पूछ हैं x वज्रस्वामी ने उपयोग दिया और जाना कि 10वां पूर्व मुझसे ही विच्छेद होगा अत: आ.रक्षित को जाने की संमति दी और स्वयं दक्षिणापथ चले x आ.रक्षित दशपुर गए xx

वज्रस्वामी का अनशन

दक्षिणापथ में वज्रस्वामी को कफ हुआ x साधुओं को कहा - सूंठ लाना x इन्होंने कान पर रखी कि गो वापरकर फिर लूँगा x भूल गए x शाम को प्रतिक्रमण में मुहपत्ति पडिलेहन में नीचे गिरी x उनका उपय गया - कि - अहो! प्रमाद हुआ, प्रमत्त को संयम नहीं होता अत: भक्त प्रत्याख्यान अनशन श्रेयस्क

12 वर्ष का दुःकाल पड़ा x सभी रास्ते बंद हुए x गोचरी नहीं मिली x वज्रस्वामी ने विद्या से अभ्याहृत पिंड लाकर साधुओं को दिया और कहा - गोचरी मिलने वाली नहीं है, 12 साल तक ऐसे ही वापरना पड़ेगा यदि लगे कि वापरे बिना संयम नष्ट होगा तो वापरलो, यदि लगे कि वापरे बिना समाधिटिके तो अनशन कर लो x कुछ ने अनशन का कहा. कुछ ने वापरा x वज्रस्वामी ने आ.वज्रसेन को आज्ञा देकर अन्य जगह भेज दिया और कहा - जब तुझे लाख मूल्य की भिक्षा मिले उसके दूसरे दिन सुकाल होगा x

शेष साधुओं को लेकर वज्रस्वामी एक पर्वत पर चढ़े x एक बाल मुनि को साधुओं ने कहा - तू वापस जा x वह नहीं माना तो रास्ते में उसे मार्ग भूला दिया x उसने सोचा - यदि मैं सबके साथ रहूंगा तो सबको असमाधि होगी x अत, वहीं पर एक शिला पर अनशन किया x वे बालमुनि गर्मी से मक्खन की तरह पीघलकर जल्दी ही काल कर गए x देवों ने उत्सव किया x वज्रस्वामी ने सबको कहा - बाल मुनि ने स्वार्थ साध लिया x बालमुनि ने इतना सहन किया तो हम भी सहन करें, ऐसे सभी दुगुण उत्साही हुए x उस पर्वत पर देवी शत्रु थी, उसने श्राविका का रूप कर साधुओं को कहा हे मुनि! आज पारणा करो इत्यादि उपसर्ग किए x आ.वज्रस्वामी ने जाना यहाँ रहेंगे तो देवी को भ होगी अत: पास वाले पर्वत पर गए x देवी का कायोत्सर्ग किया x देवी ने कहा - आप आराम से रहो x अन किया x समाधि से काल किया x इंद्र ने रथ में आकर वंदन किए और रथ से प्रदक्षिणा दी x

सभी वृक्षों को एक तरफ नमाया x वे वृक्ष आज भी वैसे ही हैं x उस पर्वत का नाम 'रथावर्त' गिरि पड़ा xx वज्रस्वामी के साथ अर्धनाराच संघयण और 10 पूर्व विच्छेद हुए xx

वज्रसेनाचार्य

वे वज्रसेनाचार्य सोपारक नगर पहुँचे x वहाँ एक श्राविका तत्त्वज्ञ थी x उसने सोचा - खाद्य बिना कैसे जीएँ? भिक्षावृत्ति से हम नहीं जी सकते अतः लाख मूल्य वाले चावल में विष डालकर खाने से नमस्कार सहित मरें x उसने चावल बनाए x वे आ. वहाँ पहुँचे x उसने चावल व्होराए और कहा कि हम तो जहर खानेवाले थे x वज्रसेन आ. - अनशन मत करना, वज्रस्वा. ने कहा था कि ... कल सुकाल होगा x उसी दिन नगर में चावल के जहाज आए x अतः सुकाल हुआ x श्राविका ने (5 पुत्रों के साथ) दीक्षा ली x इससे वज्रस्वामी की शिष्य परंपरा चली x
(इन 5 पुत्रों से 5 कुल शुरू हुए x वर्तमान में चान्द्र कुल की परंपरा है x वह इन श्राविका के चंद्र नामक पुत्र से, जो चंद्रसूरि बने, शुरू हुई) xx

आर्यरक्षित सूरि - स्वजनों की दीक्षा

आर्यरक्षित ने दशपुर जाकर सभी स्वजनों को दीक्षा दी x उनके पिता अनुराग से उनके साथ रहते हैं किंतु वेश नहीं लेते x वे सोचते हैं - यहाँ मेरी पुत्री, पुत्रवधू और पौत्रियाँ हैं, उनके सामने कैसे नग्न रहूँ? x आ. ने बहुत बार कहा तो बोले - मैं एक कुंडी, और वस्त्र युगल, के साथ (छत्र, जनोई, चप्पल) दीक्षा लूँगा x आ. ने हाँ कही x पिता को दीक्षा दी x एकदा सभी चैत्य दर्शन करने गए x पहले से सीखाए हुए बच्चे साधुओं को वंदन करने आए x बच्चे - हम छत्र वाले को वंदन नहीं करेंगे x पिता मुनि को अपमानित देख आ. - छत्र छोड़ दो, धूप लगे तो कामली ओढ़ना x ऐसे छत्र छोड़ा x इस प्रकार कुंडी, जनोई, चप्पल छुड़ाई x कुंडी की जगह मात्रक की छूट दी x
बच्चे - हम धोती वाले को वंदन नहीं करते x पिता मुनि - वे भले वंदन न करे किंतु मैं धोती छोड़ने वाला नहीं हूँ x
एकदा गच्छ में साधु का कालधर्म हुआ x महापारिष्ठापनिका के लिए जाना था x आ. द्वारा सीखाए हुए साधु झगड़ते हुए आए - हम उठाएँगे x आ. - मेरा स्वजनवर्ग उठाएगा x पिता मुनि - क्या इसमें बहुत निर्जरा है? x आ. - हाँ x पिता मुनि - तो मैं उठाऊँगा x आ. - उपसर्ग आएँगे, यदि सहन नहीं करोगे तो मेरा अच्छा नहीं होगा x पिता - मैं सहूँगा x उन्होंने उठाया तो बच्चों ने धोती खींच ली x साधु ने दूसरी धोती कंदोरे से बांधी किंतु नग्न प्रायः रहे x ऐसे ही वापस आए x आ. - ये क्या हुआ? x पिता - उपसर्ग हुआ x आ. - लाओ धोती x पिता - धोती क्या? जो देखने का था, वह तो सबने देख लिया, चोलपट्टा ही लाओ x इस प्रकार चोलपट्टा पहनाया xx

आ. ने सोचा-मेरे पिता गोचरी नहीं लाते, कभी साधु नहीं लाए तो अकेले क्या करेंगे और
गोचरी से निर्जरा भी होगी अतः एकांत में साधुओं को समझा दिया x सबको बुलाकर कहा- मैं अ
गाँव जाता हूँ, तुम वृद्ध के साथ अच्छी तरह रहना x गए x पिता मुनि को कोई भी गोचरी नहीं देत
दूसरे दिन आ. आए तब गुस्से में बोले - मेरे पुत्र-पौत्र भी मुझे कुछ नहीं देते x आ.- पात्रे लाओ
मेरे पिता की गोचरी मैं लाऊँगा x पिता ने सोचा- ये तो आचार्य होने से कैसे गोचरी लाएग
अतः स्वयं गए x पहली बार गए तो घर में पीछे के दरवाजे से घुस गए x गृहस्वामी- पीछे
क्यों आए? x मुनि-घर में आती लक्ष्मी के लिए आगे-पीछे क्या? जहाँ से आए अच्छा है x उन
32 लड्डु व्होराए x गोचरी आलोई x आ.- गृहस्थपन में राजकुल से कुछ मिलता तो पहले कि
देते? x पिता मुनि- ब्राह्मणों को x आ.- ये साधु भी पूज्य हैं अतः इनकी भक्ति करो x सभी लड्डु
उन्हें दिए x आ.- 32 लड्डु से आपकी परंपरा में 32 शिष्य होंगे x
वे पुनः गोचरी गए x खीर मिली x उपाश्रय आकर खीर वापरी x इस प्रकार वे लब्धि संपन्न
से बहुत काल तक बाल-दुर्बल साधु के आधार बने।

3 पुष्पमित्र

उस गच्छ में 3 पुष्पमित्र थे x 1. दुर्बलिका पुष्पमित्र- ये मेधावी थे x —
2. घृतपुष्पमित्र- ये घी की लब्धि वाले थे x
द्रव्य से घी लाना, क्षेत्र से उज्जयिनी, काल - जेठ अषाढ़ माह, भाव से गर्भिणी ब्राह्मणी के पास
व्होरना। एक ब्राह्मण ने थोड़ा-थोड़ा इकट्ठा करते हुए 6 माह में एक घड़ा भरा- प्रसूति के बाद माता
लिए x साधु पहुँचा x घर में कुछ था नहीं अतः हर्षित होकर स्त्री ने घी व्होराया x गच्छ क
जितना घी चाहिए था, उतना ये ला सकते थे x गोचरी जाते हुए सबको कितना घी
चाहिए, उतना पूछ लेते x
3. वस्त्रपुष्पमित्र - वस्त्र लब्धि वाले थे x
द्रव्य से वस्त्र, क्षेत्र से उज्जयिनी या मथुरा, काल से वर्षा या शीत, भाव से विधवा स्त्री। एक विधव
ने अतिदुःख से मरते-मरते एक वस्त्र बनाया x 'कल मैं पहनूँगी' सोचा x पुष्पमित्र पहुँचे x खुश
से व्होराया x ये भी गच्छ को चाहिए उतने वस्त्र ला देते थे xx

दुर्बलिका पुष्पमित्र

दुर्बलिका पुष्पमित्र ने 9 पूर्व पढ़े x वे रात-दिन स्वाध्याय करते हैं; जिससे दुर्बल हुए x दशपुर में ही उनके स्व
रहते हैं जो बौद्ध हैं x वे आ. को कहते हैं- हमारे भिक्षु ध्यान में तत्पर होते हैं; तुम्हे ध्यान नहीं आता x
हम भी ध्यान करते हैं; ये दुर्बलिका पुष्पमित्र ध्यान से ही दुर्बल हैं x स्वजन- घर में वह स्निग्धाहार से बल
था, अभी स्निग्धाहार नहीं होगा x आ.- यह घी बिना कभी नहीं वापरता x स्वजन- तुम्हे घी कहाँ मिले

आ.- घृतपुष्पमित्र लाता है x स्वजन विश्वास नहीं करते x आ. ने शिष्य को उनके घर भेजा, स्निग्धाहार
खोराओ x स्वजन अधिक-अधिक स्निग्धाहार खोराते हैं, अंत में थक गए x आ. ने दुर्बलिका. को
कहा तू अंतप्रांत भोजन कर और स्वाध्याय मत कर x वह कुछ दिन में ही पुष्ट हो गया x वे सब
स्वजन श्रावक बने xx

उस गच्छ में ४ प्रधान शिष्य थे - 1. दुर्बलिका पुष्पमित्र - जिन्होंने आ. के पास से सभी सूत्रार्थ ग्रहण किए थे।
2. विंध्य - ये भी मेधावी थे 3. फल्गुरक्षित - ये भी मेधावी थे।
4. गोष्ठामाहिल - ये आ. के मामा थे, इनके पास वाद लब्धि थी।

आर्य रक्षितसूरि द्वारा पृथक्करण

विंध्य को सूत्र-अर्थ जल्दी याद हो जाते थे x जब तक परिपाटी से आलापक का क्रम आता तब तक वे सूत्र मांडली में खेद पामते थे x उन्होंने आ. को कहा x आ. ने उन्हें दुर्बलिकापुष्पमित्र वाचनाचार्य तरीके दिया x दुर्बलिका. कुछ दिन वाचना देने के बाद आ. को कहा - वाचना देने में मेरा सब भूला रहा है, मेरा ९वां पूर्व नष्ट होगा x

आ. ने सोचा - परममेधावी इसे भी स्वाध्याय करने पर भी याद नहीं रहता तो अन्य को तो पूरा नष्ट हो जाएगा x अत: उन्होंने उपयोग देकर जाना और ग्रहण-धारणा की दुर्बलता जानकर सुखपूर्वक ग्रहण-धारण के लिए ४ अनुयोगद्वार अलग किए।

टीप्पणक

* विशेषावश्यकभाष्य की गा. 2290-93 का अर्थ →
गा. 2290-1 ⇒ आर्यरक्षित सूरि म. ने श्रुत अतिशय में उपयोग देकर क्षेत्र-काल के अनुभाव को तथा स्वयं के अलावा अन्य को "मति-मेधा से हीन जानकर शिष्यों के प्रति अनुग्रह से सुख पूर्वक ग्रहण-धारणादि के लिए चरण-करणादि अनुयोगों को अलग किया और नयों के विभाग को छूपा दिया।
(i) मति - अर्थ ग्रहण विषयक, मेधा - सूत्र ग्रहण विषयक।

अनुयोगपृथक्करण और नय के अविभागीकरण का सामान्य से कारण बताकर पुन: नय के अविभागीकरण का कारण विशेष से कहते हैं - गा. 2292-3 →
शिष्य ७९. के -

1. अपरिणाम - तुच्छमति वाले, जिनवचन के रहस्य से नहीं परिणत हैं जिन्हें, अगीतार्थ।
2. अतिपरिणाम - एकांतक्रिया अथवा ज्ञान के प्रतिपादक एक नय के मत से जिनका अंतःकरण वासित हो तथा उत्सर्ग में जिनका चित्त मोहित हो।
3. परिणाम - मध्यस्थवृत्ति वाले, जिन्हें जिनवचन परिणत हो।

जो अपरिणाम हैं, वे नयों के स्व-स्व विषयों की अश्रद्धा करते हुए तथा अतिप... एक ही नय को पकड़कर, शेष नयों में विरोध मानते हुए मिथ्यात्व को प्राप्त होते... वे मिथ्यात्व को प्राप्त न हो और जो परिणामी हैं, वे भी नयों के सूक्ष्मतर भेदों... ग्रहण करने में अशक्त होते हैं अतः आर्यरक्षित सूरि ने नय विभाग निकाल दिए...

(इन गाथा की व्याख्या मलयगिरीय टीका में भी है)

मलयगिरीय टीका आव. अनुयोग के 4 पृ. —
भा. 124 ॥ अंग रूप कालिक श्रुत चरणकरणानुयोग, उत्तराध्ययन-ऋषिभाषितादि धर्मकथानु...
गा. 777 गणितानुयोग - सूर्य-चंद्रप्रज्ञप्त्यादि, द्रव्यानुयोग - दृष्टिवाद।
छेदसूत्र - चरणकरणानुयोग

आर्यरक्षितसूरि को इंद्र द्वारा वंदन

वे मथुरा गए x भूतगुहा नामक व्यंतर के मंदिर में रहे x
शक्र सीमंधरस्वामी को पूछता है - निगोदजीव का स्वरूप x भ. द्वारा समझाने के बाद कहा - भरत क्षेत्र में कोई ऐसा समझाने वाला है? x भ. - आर्यरक्षित सूरि x वह ब्राह्मण का रूप कर आया x सभी साधु निकले तब वृद्ध का रूप कर आया x वंदनकर पूछा - मेरे शरीर में ये व्याधि है... मेरा कितना आयुष्य है, वह बताओ x पत्रिकों में आयुश्रेणि कही है x उसमें उपयोग दिया x धीरे-धीरे बढ़ते गए x सोचा - यह भरतक्षेत्र का मनुष्य नहीं है विद्याधर या व्यंतर है x बढ़ते हु... 2 सा. पर रुके x हाथ से भ्रमर को उठाकर बोले - आप शक्र हो x उसने वंदन कर वृतांत कहा और निगोद स्वरूप पूछा x आ. ने समझाया x शक्र - अब मैं जाऊँ? x आ. - एक मुहूर्त रुको जिससे साधु देखकर स्थिर होंगे कि अभी भी इंद्र नीचे आता है x शक्र - मुझे देखकर वे अल्पसत्त्व वाले निदान करेंगे अतः मैं जाऊँ वही अच्छा x आ. - तो कुछ चिह्न कर जाओ x दिव्य गंध फैलाई, द्वार बदल दिया x साधुओं को द्वार नहीं मिला x आ. - इस तरफ से आओ x आ. ने कहा - शक्र आए थे कि।

वे ~~दशपुर~~ ~~दशपुर~~ दशपुर गए x मथुरा में अक्रियावादी उठा x संघ एकत्र हुआ x वादी नहीं था x संघ ने...

आ. के पास संघाटक भेजा x आ. ने गोष्ठामाहिल को भेजा x वाद जीता x चौमासा वहीं रहे x
इधर आ. ने कहा कि मेरा पट्टधर दुर्बलिका पुष्पमित्र होगा x उनके स्वजन ने कहा - गोष्ठामाहिल या फल्गुरक्षित को बनाओ x आ. - 3 प्र. के घड़े होते हैं:-

1. वाल का घड़ा - उल्टा करने पर सब निकल जाता है कुछ बाकी नहीं रहता।
2. तेल " - " " " कुछ रह जाता है।
3. घी " - " बहुत " ।

मैं दुर्बलिका के लिए वाल के घड़े जैसा हूँ, उसने मुझसे सभी सूत्रार्थ ग्रहण किए। फल्गुरक्षित के लिए तेल के घड़े जैसा हूँ। गोष्ठामाहिल के लिए घी के घड़े जैसा हूँ। अतः सूत्रार्थ से युक्त दुर्बलिका पुष्पमित्र आपका आचार्य होगा x इन लोगों ने स्वीकारा x फिर हितशिक्षा दी कि जैसे तुम मुझसे वर्तते हो वैसे इससे वर्तना, मैं तो तुम पर गुस्सा नहीं करता किंतु यह तुम्हारे अकृत्य को सहन नहीं करेगा x तथा दुर्बलिका को कहा - मैं जैसे फल्गुरक्षित और गोष्ठामाहिल से वर्तता हूँ, वैसे तू भी वर्तना x
इस प्रकार भक्त प्रत्याख्यान कर देवलोक गए xx

गोष्ठामाहिल ने सुना आ. का कालधर्म हुआ x आया x पूछा - कौन आचार्य बना? x सबने घड़े का दृष्टांत कहा वि. x अन्य उपाश्रय में रहा x आया तब सबने वंदन कर कहा - यहीं रहो x वह मना करता है x बाहर रहकर अन्यों को व्यामोहित करता है x किंतु वह समर्थ नहीं हुआ x आ. दुर्बलिका. वाचना देते हैं तब वह सुनता नहीं है x वाचना के बाद विंध्य अनुभाषक बनता है x तब 8वे कर्मप्रवाद पूर्व में बंध विचार में वह अभिनिवेश से अन्यथा प्ररूपणा करता हुआ निह्नव हुआ xxx।

'गा. 778 - 788 निह्नववाद'

अव. निह्नव वक्तव्यता - (यहाँ सामान्य से)

गा. 778-83

S. No.	नाम	मत	स्थान	काल	आलोचना
1.	जमालि	बहुरत (i)	श्रावस्ती	14 वर्ष (ii)	जमालि सिवाय अन्य (iii)
2.	तिष्यगुप्त	जीवप्रदेश	ऋषभपुर	16 वर्ष	✓
3.	आषाढ़	अव्यक्त	श्वेतविका	214 "	✓
4.	अश्वमित्र	सामुच्छेद	मिथिला	220	✓

Page No.:
Date:

5.	गंग	द्वैक्रिय	उल्लुकातीर	228	✓
6.	रोहगुप्त	त्रैराशिक	अन्तरंजिका	544	×
7.	गोष्ठामाहिल	स्पृष्ट/अबद्ध कर्म + अपरिमाण प्रत्याख्यान	दशपुर	584	×
8.	शिवभूति	बोटिक	रथवीरपुर	609	×

(i) उनके मत का संक्षिप्त रूप -

1. बहुरत - एक समय में क्रिया/कार्योत्पत्ति नहीं होती, बहुत समय में होती है।
2. जीवप्रदेश - अंतिमप्रदेश ही जीव है।
3. अव्यक्त - संयतादि के बोध में अव्यक्त/संदेहास्पद।
4. सामुच्छेद - क्षणिक वस्तु कहने वाले।
5. द्वैक्रिय - 2 क्रिया एक (या 2 उपयोग) एक समय में मानने वाले।
6. त्रैराशिक - जीव, अजीव, नोजीव रूप तीन राशियों की प्ररूपणा करने वाले। (नैयायिक दर्शन की उत्पत्ति प्राय:)
7. अबद्धिक - जीवों के साथ कर्म अबद्ध और स्पृष्टमात्र होता है। तथा प्रत्याख्यान अपरिमित होना चाहिए।
8. बोटिक - द्रव्यलिंग से भी अलग हैं।

(ii) प्रथम दो का काल भ. के केवलोत्पत्ति से बताया है। बाकी सबका काल निर्वाण से बताया है।

(iii) आलोचना यानि सही बात समझने पर उन्होंने गुरु के पास आलोचना की या नहीं।

मू. भा. ~~१०~~ 125-148 और गा. 783-788 तक 'निन्हववाद'।

सव. ~~K समवतार द्वार पूर्ण। L अनुमत द्वार - (मूलद्वार गा. 137-8 देखें)~~

टीप्पणक ★ दिगंबरों का गा. 780 में साक्षात् ग्रहण नहीं किया किंतु 781 में उनका स्थान कहा है। अत: हरिभद्र सू. जी लिखते हैं कि आगे कहे जाने वाले द्रव्यलिंग से भिन्न मिथ्यादृष्टि ऐसे दिगंबरों के स्थान रथवीरपुर का उपन्यास लाघव के लिए किया है।

इस पर मलधारी हेमचंद्र सूरि जी टिप्पणी लिखते हैं -

पू. दिगंबर भी ~~निह्नव~~ निह्नव हैं तो मूलगाथा में क्यों उनका उपन्यास नहीं किया?
उ. विशेषण अर्थ वाले खलु शब्द से सूचित होने के कारण।

पू. साक्षात् ग्रहण क्यों नहीं किया?
उ. जो द्रव्यलिंगादि से कुछ सदृशता रखते हैं, उनका ही ग्रहण किया है। जो द्रव्यलिंग से भी भिन्न हैं, ऐसे दिगंबरों को आगे कहेंगे।

पू. तो निह्नव के उत्पत्तिस्थान की गाथा में क्यों उनके नगर का उपन्यास किया?
उ. यदि यहाँ उनके नगर का उपन्यास नहीं करते तो उनकी वक्तव्यता के अवसर पर अन्य द्वार गाथा करना पड़ती।

पू. यहाँ उपन्यास करने पर भी मू.भा.146 तो लिखी ही है, अतः लाघव क्या हुआ?
उ. यदि ऐसा कहोगे तो सभी निह्नवों की वक्तव्यता के अवसर पर भी गाथा तो कही ही है, अतः यह गाथा ही अनर्थक हो जाएगी।
पू. उन सब में तो विशेष विवरण कहना था इसलिए वक्तव्यता पर भी गाथा कही।
उ. वह विशेष विवरण यहाँ दिगंबर में भी समान है इसलिए यहाँ नगर का उपन्यास और वक्तव्यता के अवसर पर गाथा का उपन्यास, दोनों युक्त है।

मलयगिरीय टीका गा. 789

अत. K. समवतार द्वार पूर्ण। L. अनुमत द्वार - (मूल द्वार गा. 137-8, Pg.No. 161 भा.1)
जिस नय को भी सामायिक मोक्षमार्ग रूप में अनुमत है, वह कहते हैं -
★ तप और संयम से चारित्र सामायिक का ग्रहण। प्रवचन = श्रुतसामायिक। च शब्द से सम्यक्त्वादि सामायिक।
★ ~~अवसर~~ नैगम-संग्रह-व्यवहार सभी सामायिक को मोक्षमार्ग मानते हैं।
ऋजुसूत्रादि चारों नय चारित्र " " ही " " ।

प्र. नैगमादि सभी सामायिक को मोक्षमार्ग मानते हैं तो वे मिथ्यादृष्टि क्यों हैं?
उ. क्योंकि सभी सामायिक को अलग-अलग मोक्षमार्ग मानते हैं, एकसाथ नहीं।

* सभी नयों के तर्क –

नैगमादि – सभी सामायिक मोक्षमार्ग हैं।

ऋजुसूत्रादि – चारित्र ही मोक्षमार्ग हैं क्योंकि सर्वज्ञ होने पर भी जब तक सर्वसंवर न हो, तब तक मोक्ष नहीं होता।

नैगमादि – ज्ञान-दर्शन बिना सर्वसंवर भी नहीं होता, अत: वे भी कारण हैं।

ऋजु. – ज्ञानदर्शन बिना सर्वसंवर नहीं होता तो वे सर्वसंवर के कारण होंगे, मोक्ष के नही क्योंकि उनका अन्वय सर्वसंवर के साथ है। तथा मोक्ष के साथ उनका अन्व नहीं है क्योंकि सर्वज्ञ होने पर भी मोक्ष नहीं होता।
तथा यदि परंपर कारण मानो तो पूरे संसार को मोक्ष का कारण मानने की अतिव्याप्ति ह क्योंकि संसार में रही सभी वस्तु ज्ञेय-श्रद्धेय-प्रवृत्तिनिवृत्ति का विषय होने से ज्ञानाद में उपयोगी है। अत: ज्ञानादि ३ में का ही क्यों आग्रह करते हो।

* भ. के मत में तीनों सामायिक (ज्ञान-दर्शन-चारित्र) परस्पर सापेक्ष रूप में मोक्षमार्ग

* तापयति इति तपः। असु प्रत्यय औणादिक।

अब 'उद्देसे निद्देसे' वाली गा. १३७ पूर्ण। अब गा. १३८ की व्याख्या करेंगे। उसमें भ. किम् द्वार सामायिक क्या जीव है या अजीव? द्रव्य है या गुण? –

गा. ७९० आत्मा ही सामायिक है। प्रत्याख्यान करता हुआ ही आत्मा है। वह प्रत्याख्यान सभी द्रव्यों के आपात में होता है।

* 'प्रत्याख्यान.... आत्मा है' – प्रत्याख्यान में परिणत जीव ही वास्तविक आत्मा है क्यो वह श्रद्धा-ज्ञान-सावद्यनिवृत्ति रूप स्वभाव में स्थित है। शेष संसारी जीव आत्मा ही नहीं है क्योंकि प्रचुर घाति कर्म के परमाणुओं से उसके स्वाभाविक गुणों का तिरस्कार होता है।

* वह प्रत्या.... होता है' – वह ~~सामायिक~~ प्रत्याख्यान सभी द्रव्यों के आपात में होता है क्य सभी द्रव्य ज्ञेय-श्रद्धेय-प्रवृत्तिनिवृत्ति ~~रूप~~ बने से उसके विषय हैं।

प्र. 'किं सामायिकं' स्वरूप का प्रश्न होने पर उसके विषय का निरूपण न्यायपुक्त नहीं है। क्योंकि वह अप्रस्तुत है।

उ. 'अप्रस्तुत' यह हेतु असिद्ध है क्योंकि सामायिक के विषय का निरूपण सामायिक का अंग होने से प्रस्तुत है।

अत. 'आत्मा सामायिक है' कैसा आत्मा सामायिक है, वह भाष्यकार बताते हैं-

भा. 149 सावद्ययोग से विरत, त्रिगुप्त, छकाय में संयत, उपयुक्त, यतमान आत्मा सामायिक है।

★ ये गाथा कौतुक वाले शिष्यों के अनुग्रह के लिए नयों से कहते हैं।

संग्रह आत्मा सामायिक है, क्योंकि उससे अन्य कोई गुण होता ही नहीं है।

व्यवहार यदि 'आत्मा सामायिक है' ऐसा कहोगे तो अतिव्याप्ति होगी, जो जो आत्मा है वह वह सामायिक है। अतः ऐसा कहना चाहिए कि जयणा करती आत्मा सामायिक है

ऋजुसूत्र यदि ऐसा कहोगे तो तापसादि वि. स्वच्छंदता से जयणा करते हुए भी सामायिक है, किंतु वे तो मिथ्यादृष्टि हैं। उपयुक्त जयणा वाला आत्मा सामायिक है। उपयुक्त यानि ज्ञेय का ज्ञान और पत्याख्येय के पत्याख्यान का परिणाम। ऐसा कहने पर तापसादि वि. का व्यवच्छेद होगा क्योंकि उनको सम्यग्ज्ञान-पत्याख्यान असंभव है।

शब्द यदि ऐसा कहोगे तो अविरतसम्यक्ती और देशविरत को भी सामायिक होगी क्योंकि उन्हें भी सम्यग्ज्ञान और पत्याख्यान हो सकता है। छकाय में संयत, उपयुक्त, जयणा वाली आत्मा सामायिक है। संयत=सम्यक् संघट्टपरितापादि से विरत। ऐसा कहने पर अविरत-सम्यग्दृष्टि और देशविरत का व्यवच्छेद होगा क्योंकि त्रिविध-त्रिविध उनको विरति नहीं होती।

समभिरूढ यदि ऐसा कहोगे तो प्रमत्तसंयत भी सामायिक वाले होंगे। अतः त्रिगुप्त संयत उपयुक्त यतमान आत्मा सामायिक है। त्रिगुप्त से ५ समिति भी लेना।

एवंभूत यदि ऐसा कहोगे तो अप्रमत्तसंयतादि को भी सामायिक होगी। अतः सावद्ययोग से विरत गुप्त संयत उपयुक्त यतमान आत्मा सामायिक है। ~~अवद्य~~ अवद्य=कर्मबंध, कर्मबंध सहित जो आत्मा है वह सामायिक नहीं है। अतः जिसने सूक्ष्मबादर सभी योगों का निरोध कर दिया है ऐसी शैलेशी को प्राप्त आत्मा सामायिक है।

नैगम अनेक गम होने से 2-3-4 या ५ विशेषण से विशिष्ट आत्मा को सामायिक मानता है।

अन्य ऐसा कहते हैं –

संग्रह आत्मा सामायिक है।

व्यवहार यदि ऐसा कहोगे तो सावद्यव्यापार से बहुत जीवों को सामायिक होगी। अतः सावद्ययोग से विरत आत्मा सामायिक है।

ऋजुसूत्र यदि ऐसा कहोगे तो सम्यक्त्वसामायिक और श्रुतसामायिक वाले (अर्थात् अविरत सम्यग्दृष्टि) को सामायिक होगी किंतु विरति का अभाव होने से सम्यक्त्व और श्रुत निष्फल है। अतः संयम ही सामायिक है। अतः सावद्ययोगविरत त्रिगुप्त आत्मा सामायिक है।

शब्द इसमें तो देशविरतों को भी सामायिक होगी क्योंकि जब वे सामायिक करेंगे तब सावद्य से विरत होंगे और गुप्त भी होंगे। अतः सावद्ययोग विरत गुप्त 6काय में संयत आत्मा सामायिक है क्योंकि देशविरतों को त्रिविध-त्रिविध पच्चक्खाण नहीं होता।

समभिरूढ़ इसमें तो प्रमत्तसंयतादि को भी सामायिक होगी। अतः सावद्ययोगविरत गुप्त संयत और उपयुक्त आत्मा सामायिक है। उपयुक्त यानि कषाय के लेश से भी रहित। ये उपशांतमो ही होते हैं।

एवंभूत समुद्घात करते सयोगी केवली या अयोगी केवली (14वां गुणस्थान) को ही सामायिक होती है क्योंकि सामायिक का फल मोक्ष है, अतः समस्तकर्मक्षय के लिए जो समुद्घात या यथा शुक्लध्यान रूप क्रिया है, वही सामायिक है। अतः सावद्ययोगविरत गुप्त संयत उपयुक्त यतमान आत्मा सामायिक है। क्योंकि ऐसे केवली को ही ~~अतन~~ यथोक्त स्वरूप वाली यतना संभव है।

नैगम पूर्ववत्।

अव- गा.790 में कहा था 'वह प्रत्याख्यान सभी द्रव्यों के आपात में होता है'। तो महाव्रत रूप चारित्रसामायिक की सर्वद्रव्य विषयता कहते हैं –

गा.791 प्रथम महाव्रत सर्व जीव विषयक, दूसरा और अंतिम सर्वद्रव्य विषयक, शेष द्रव्यों के एकदे विषयक है।

* प्रथम प्राणातिपात विरमण महाव्रत – त्रसस्थावरसूक्ष्मबादर सर्वजीव विषयक है।

* मृषावाद विरमण और परिग्रह निवृत्ति रूप दूसरा और अंतिम महाव्रत – सर्व द्रव्य विषयक है। eg. लोक पंचास्तिकायमय नहीं है, यह सर्वद्रव्यविषयक मृषावाद है। मूर्च्छा भी सर्व द्रव्य पर हो सकती है।

★ तीसरा अदत्तादानविरमण ग्रहण और धारणीय द्रव्य विषयक।
चौथा मैथुन विरमण रूप (पुतली वि. अजीव) और रूपसहगत (स्त्री वि. जीव) विषयक है।
छठा रात्रिभोजन विरमण भी रात्रिभोजन विषयक।
तीनों देश विषयक हैं।

★ श्रुतसामायिक श्रुतज्ञानात्मक होने से सर्वद्रव्यविषयक।
सम्यक्त्वसामायिक गुणपर्याय सहित सर्वद्रव्यों के श्रद्धान विषयक।

अतः 'सामायिक जीव है' ऐसा कहने से अजीव का व्युदास हुआ और जीव द्रव्य-गुण समुदायात्मक है अतः द्रव्य और गुण में सामायिक है। यहाँ नयों से विचारणा है, क्योंकि कुछ नय 'सामायिक द्रव्य है', कुछ नय 'सामायिक गुण है' ऐसा मानते हैं। सभी नयों के आधारभूत 2 नय हैं - द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। नैगम-संग्रह-व्यवहार द्रव्यार्थिक, शेष पर्यायार्थिक। इन 2 नयों की प्ररूपणा -

गा. 792 द्रव्यार्थिक नय को गुणप्रतिपन्न जीव ही सामायिक है। पर्यायार्थिक नय को सामायिक जीव का गुण है।

★ द्रव्यं एव अर्थः यस्य द्रव्यार्थिकः
वस्तुतत्त्वबुद्ध्या द्रव्ये स्थितः द्रव्यास्थितः
द्रव्ये अस्ति मतिः अस्य द्रव्यास्तिकः
(मूल में द्रव्ययिय शब्द के ये 3 विकल्प होते हैं।)
गुण औपचारिक होने से असत् हैं क्योंकि द्रव्य के बिना वे प्राप्त नहीं होते।

प्र. यदि रूपादि नहीं है तो लोक का द्रव्य में उनकी प्रतिपत्ति कैसे होती है?
उ. चित्र में जैसे 'यह नीचा है, यह ऊँचा है' ऐसा भेद भ्रांत है वैसे गुण की प्रतिपत्ति भी भ्रांत है।

प्र. ऊपर मूल 'गुणप्रतिपन्न जीव' लिखने से गुण भी होंगे।
उ. यहाँ 'गुण' विशेषण होने से जीव का ही तात्त्विकपन है। जैसे 'पावक' इस प्रकार बोलने पर पुरुष की प्रधानता होती है, पचन क्रिया गौण होती है।

★ पर्यायास्तिक, पर्यायार्थिक या पर्यायस्थित नय को सामायिकादि परमार्थ से जीव के गुण हैं। क्योंकि गुण के बिना द्रव्य नहीं होता।

प्र. 'आत्मा सामायिक है' इसमें तो द्रव्य कहा है।
उ. यह उपचार से कहा गया है। eg. शुक्ल पट, पीली हल्दी आदि।

अब पर्यायार्थिक नय के तर्क -
भा. 793 गुण उत्पन्न होते हैं, व्यय होते हैं, परिणमते हैं, द्रव्य नहीं। गुण द्रव्य से उत्पन्न नहीं होते हैं, द्रव्य गुण से उत्पन्न नहीं होते।

★ गुण ही उत्पन्न होते हैं, नष्ट होते हैं और परिणमते हैं अर्थात् तरतमता अनुभवते हैं
अतः गुणा एव, न द्रव्याणि, तेषां आकालं एकरूपत्वेन अवस्थितत्वात्।

★ गुण द्रव्य से उत्पन्न नहीं होते किंतु परस्पर प्रत्यय भाव से उत्पन्न होते हैं। द्रव्य गुण से उत्पन्न नहीं होते। अतः द्रव्य कारण भी नहीं है और कार्य भी नहीं। अतः वह असत् है क्योंकि सत् हमेशा कारण या कार्य रूप में संभव होता है।

★ अस्तित्व यानि अर्थक्रियाकारित्व। जो अर्थक्रियाकारि है वह सत् है। द्रव्य असत् है क्योंकि वह कारण या कार्य रूप न होने से अर्थक्रियाकारि नहीं है।
सभी अर्थक्रियाकारिता कारणकार्य रूप के साथ व्याप्त है अर्थात् कारण-कार्यरूप व्यापक है, अर्थक्रियाकारि (=अस्तित्व) व्याप्य है।
द्रव्य में कारण-कार्यपन नहीं है अर्थात् व्यापक नहीं है तो अस्तित्व रूप व्याप्य भी नहीं होगा। अतः व्यापकानुपलब्धि होने से द्रव्य में अस्तित्व नहीं है।

~~अब द्रव्यार्थिक नय के तर्क -~~
~~भा. 794~~ मलयगिरि म. के अर्थ के साथ 'अथवा' में यह अर्थ -
हरिभद्रीय वृत्ति → गुण द्रव्य से उत्पन्न नहीं होते किंतु द्रव्य गुणों से उत्पन्न होते हैं ⇒
द्रव्यप्रभवाश्च गुणा न, किंतु गुणप्रभवाणि द्रव्याणि, प्रतीत्यसमुत्पादोपजातगुणसमुदये द्रव्योपचारात्।
प्रतीत्य समुत्पाद यानि आश्रय लेकर उत्पन्न होना। गुण से ~~द्रव्य~~ गुणों का आश्रय

△ इसी गा. को हरिभद्रसू.म. ने व्याख्यान करते हुए 795 क्रमांक भी दिया है अतः यहाँ से गाथा क्रमांक हरिभद्रीयवृत्ति में अलग है। गा. 801 में मलयगिरि म. ने भी क्रमांक बदल दिया।

~~इसे~~ लेकर गुण उत्पन्न होते हैं अर्थात् जैसे गुण कपाल में हैं वैसे ही गुण घट में आते हैं। कपाल लाल है तो घट भी लाल होगा।
इस प्रकार प्रतीत्यसमुत्पाद से उत्पन्न गुण के समुदाय में द्रव्य का उपचार करने से गुण से गुणों का आश्रय लेकर द्रव्य उत्पन्न होते हैं।
यहाँ भी द्रव्य का उपचार होने से वह वास्तविक नहीं है, गुण ही वास्तविक है।

चूर्णि → पर्यायार्थिक नय का मत - गुण उत्पन्न होते हैं; नष्ट होते हैं; परिणमते हैं; द्रव्य नहीं।

(ये मत मलयगिरि टीका तथा हरिभद्रीयवृत्ति में भी है, देखो pg. 88 पर *)

इस प्रकार पर्यायार्थिक नय द्वारा कहने पर द्रव्यार्थिक नय कहता है - गुण द्रव्य से उत्पन्न होते हैं, किंतु द्रव्य गुण से उत्पन्न नहीं होते। क्योंकि जीव के उत्पाद-विगम-परिणाम प्रकारों से ही गुण उत्पन्न होते हैं, नष्ट होते हैं, परिणमते हैं। अतः गुण द्रव्य से उत्पन्न होते हैं; द्रव्य ही वास्तविक सत् है। अतः जीव सामायिक है (गुण नहीं)।

इस प्रकार पर्यायार्थिक और द्रव्यार्थिक नय के तर्क होने पर चूर्णिकार गा. 794 को सिद्धान्त मत कहते हैं। जबकि गा. 794 को मलयगिरि म. और हरिभद्र सूरि म. द्रव्यार्थिक नय के मत में कहते हैं। [~~यह पूरा मत मलयगिरीय में भी~~]

मलयगिरीय टीका गा. 794 अव. द्रव्यार्थिक नय के तर्क -
जो वस्तु जिन-जिन भावों में प्रयोग या विस्रसा से परिणमती है, वे द्रव्य हैं। उन्हें केवली वैसे ही जानते हैं क्योंकि पर्यायरहित द्रव्य का ज्ञान नहीं होता।
↑△

* जो वस्तु भावों में परिणमती है, वह द्रव्य ही है। eg. उत्फण-विफणत्व-कुंडलिकादि पर्याय से युक्त सर्प। उत्फणत्वादि पर्याय सर्पद्रव्य से अलग नहीं मिलते अतः वे द्रव्य हैं।

* 'उन्हें केवली ... ~~जानते हैं~~ जानते' - अर्थात् उन्हें केवली पर्याय सहित ही जानते हैं क्योंकि पर्यायरहित द्रव्य को केवली भी नहीं जान सकते।
अतः द्रव्य ही परमार्थ है। जीव सामायिक है।

* Pg. No. 87 पर लिखा चूर्णिकार का मत यहाँ पर मलयगिरि म. ने भी लिखा तथा हरिभद्र सू. है। इसमें पर्यायार्थिक और द्रव्यार्थिक नय का मत गा. 793 में कहने के बाद शिष्य व्याकुल चित्त होने से पूछता है - इनमें तत्त्व क्या है? तब गुरु गा. 794 कहते हैं -

जो-जो द्रव्य जिन-जिन भावों में परिणमते हैं, उन्हें केवली ~~इन-इन भाव~~ उसी प्रकार से परिणमता हुआ जानते हैं क्योंकि पर्याय रहित द्रव्य का ज्ञान नहीं होता। अतः द्रव्य-पर्यायात्मक वस्तु तात्त्विक है।

अव. M. किम् द्वार पूर्ण। N. कतिविध द्वार (गा. 138 - Pg. 161 भा. 1 में) —
गा. 795 सामायिक 3प्र. - सम्यक्त्व श्रुत और चारित्र। चारित्र सामायिक 2प्र. - अगार और अणागारिक

* सम्यक्त्व सामायिक - 2प्र. निसर्गसम्यक्त्व सा. और अधिगम सम्यक्त्व सा.।
(उपदेश बिना) (परोपदेश पूर्वक, जीवादि त ज्ञानपूर्वक

अथवा

10प्र. निसर्ग + अधिगम 2 × 5 भेद औपशमिक सास्वादनक्षायोपशमिक वेदक क्षायि

औपशमिक - उपशमश्रेणि में अथवा प्रथम सम्यक्त्व की प्राप्ति में अंतःकरण में।
सास्वादन - औपशमिक सम्यक्त्व के काल में मिथ्यात्व में जाने की इच्छा वाले किंतु मिथ्यात्व को नहीं प्राप्त ऐसे जीव को।
क्षायोप. - सम्यक्त्व पुद्गलों को वेदते जीव को।
वेदक - दर्शनत्रिक को खपाते हुए जीव के अंतिम सम्यक्त्वपुद्गल के वेदन रूप।
क्षायिक - दर्शन त्रिक के क्षय से होते शुद्ध आत्म स्वभाव की रुचि रूप।

अथवा

सास्वादन का औपशमिक में और वेदक का क्षायो. में अंतर्भाव करने से 3प्र.

अथवा

3प्र. - 1. कारक - सम्यक्त्व होने पर जीव स्वयं सदनुष्ठान करे।
2. रोचक - जिससे सदनुष्ठान रुचे किंतु जीव अनुष्ठान करे नहीं।
3. दीपक - स्वयं मिथ्यादृष्टि होकर भी जो जीव धर्मकथादि द्वारा अन्य को सम्यक्त्व कराए, उस जीव में कारण में कार्य के उपचार से दीपक सम्यक्त्व कहते हैं।

★ श्रुतसामायिक ३प्र.- सूत्र, अर्थ, तदुभय। यह अक्षर-अनक्षरादि अनेक प्र. की है

★ चारित्र सामायिक ३प्र.- क्षायिक - क्षीणमोहादि को
औपशमिक - उपशांतमोह को
क्षायोपशमिक - प्रमत्तसंयतादि को।

अथवा

५प्र.- सामायिक छेदोपस्थाप्य परिहार विशुद्धि सूक्ष्मसंपराय यथाख्यात।

अथवा

२प्र.- अगार और अणगारिक।

अगार ⇒ अगः=वृक्षः तैः कृतत्वात् आ=समन्तात् राजते इति अगारं-गृहं
वृक्षों द्वारा कराए जाने से चारों ओर से उनके द्वारा शोभता ऐसा घर।
'अभ्रादिभ्यः' मत्वर्थीय अ प्रत्यय अगारः-गृही गृहस्थ।
तस्मिन् भवं इति आगारिकम्। 'अध्यात्मादिभ्यः' से इकण्।
यह अगार सामायिक अनेक प्र. की है क्योंकि देशविरति चित्ररूप वाली है।

अनगारः ⇒ न विद्यते स्वस्वामिभावेन अगारं अस्य इति अनगारः साधुः।
तस्मिन् भवं आनगारिकं 'अध्यात्मादिभ्यः' से इकण्।

★प्र. मूल में सम्यक्त्व और श्रुत सामायिक के भेद छोड़कर सीधे चारित्र सामायिक के क्यों कहे?

उ. ① चारित्र होने पर सम्यक्त्व-श्रुत दोनों अवश्य होते हैं।
② चारित्र अंतिम के भेद बताने से इसकी तरह पूर्ववाले के भी भेद करना, यह बताने के लिए।

गा. 150 ★ यह उपोद्घात निर्युक्ति चतुर्विंशतिस्तवादि सभी अध्ययनों में भी जानना।
प्र. सभी द्वार समाप्त होने पर अतिदेश करना चाहिए, बीच में क्यों किया?
उ. मध्य ग्रहण से आदि-अंत का भी ग्रहण हो जाता है, यह न्याय बताने के लिए।

अव. N. कतिविध द्वार- पूर्ण। O. कस्य द्वार- (मूलद्वार गा. 134 देखें)

गा. 796 जिसने आत्मा को संयम-नियम और तप में स्थित किया है, उसे सामायिक होती है, ऐसा केवली ने कहा है।

संयम- मूलगुण। नियम- उत्तरगुण। तप- 12 प्र.क।

☆ ऐसे अप्रमादि को सामायिक होती है।

गा. 797 जो ~~त्रस~~ त्रस-स्थावर सभी जीवों में सम है उसे सामायिक होती है, ऐसा केवली ने कहा है।

☆ सम= मध्यस्थ (मध्यस्थ यानि स्वयं की तरह सभी जीव को देखने वाला हरिभद्रीय वृत्ति

अव. अब सामायिक का फल दिखाकर करने की प्रेरणा देते हैं-

गा. 798 सावद्य योग के परिवर्जन के लिए परिपूर्ण सामायिक प्रशस्त है। पंडित/बुध जीव गृहस्थ धर्म से प्रधान जानकर आत्मा को उपकारक ऐसी सामायिक परार्थ के लिए करें।

☆ गृहस्थ धर्म से प्रधान जानकर जीव सर्वविरति सामायिक (परिपूर्ण) करें। शक्ति न होने पर देशविरति करें।

☆ परार्थ ⇒ जिससे दूसरा कोई पर (श्रेष्ठ) न हो ऐसा पर-~~श्रेष्ठ~~ यानि मोक्ष। इस पद से ऐसा बताया कि सामायिक मात्र मोक्ष के लिए करें, देवलोकादि के लिए नहीं। तथा निदान भी न करें।

अव. प्र. गृहस्थ भी त्रिविध- त्रिविध पच्चक्खाण ले तो क्या दोष?

उ. ~~उस~~ उसके प्रवृत्त ऐसे अनेक कर्मारंभ की अनुमोदना की अनिवृत्ति होने से ऐसा पच्चक्खाण असंभव ही है। तो भी यदि करे तो पच्चक्खाण भंग का दोष (यहाँ हरिभद्रीयवृत्ति अनुसार अर्थ लिखा है)

इसी बात को कहते हैं-

गा. 799 'सर्व' इस प्रकार कहकर जिसे सर्वविरति न हो, वह सर्वविरति कहने वाला देश से और सर्व से भी चूक जाता है। | प्रज्ञा के

★ वह देश और सर्व से इसलिए चूकता है क्योंकि देशविरति उसने स्वीकारी नहीं और सर्वविरति वह करता नहीं है।

★ प्र. आगम में तो गृहस्थ को भी त्रिविध-त्रिविध पच्चक्खाण कहा है - व्याख्या प्रज्ञप्ति में। तो आप क्यों निषेध कर रहे हो?

उ. वह स्थूल प्राणातिपातादि विषयक है। जैसे सिंह - हाथी वि. का वध, कन्यादि विषयक झूठ आदि का वह त्रिविध-त्रिविध पच्चक्खाण कर सकता है किंतु सामान्य से सभी सावद्ययोग का नहीं।
तथा जो प्रयोजन बिना का है (जैसे काकमांसादि) और जो अप्राप्य है (जैसे मनुष्य क्षेत्र के बाहर रहे हाथीदाँत, चित्र वि.) उन सबका वह त्रिविध-त्रिविध पच्चक्खाण कर सकता है।
तथा जो व्रतों को स्वीकारने की इच्छा वाला पुत्रादि के कारण विलंब करता हुआ नवीं प्रतिमा स्वीकारे और प्रतिमा के बाद अवश्य व्रत ग्रहण करे तो वह ऐसा पच्च. कर सकता है।
किंतु जो जिसने पूर्व में सावद्यकर्म की परंपरा चालू की हो वह उस पच्च. नहीं कर सकता।

गा. 801 श्रावक सामायिक करने पर ~~अल्प~~ साधु जैसा होता है अतः उसे बहुत सामायिक करना चाहिए।
(गाथा क्रमांक के लिए Pg. No. 87 पर ऊपर के Margin में 'Δ' देखें)

गा. 802 जीव अनेक अर्थों में अनेक प्रकार से प्रमाद बहुल है। अतः उसे बहुत सामायिक करना चाहिए।
★ अर्थ = शब्दादि में। ★ प्रमाद बहुल होने से एकांत अशुभ बंधक।

अब. सामायिक वाले जीव के लक्षण —
गा. 803 जो राग में नहीं वर्तता, द्वेष में भी नहीं वर्तता, वह मध्यस्थ ~~नहीं~~ होता है।
शेष सभी अमध्यस्थ।

अव. ०. कस्य द्वार पूर्ण। १. क्व द्वार – (देखें मू.द्वार गा. 138)

गा.804 1. क्षेत्र 2. दिशा 3. काल 4. गति 5. भव्य 6. संज्ञी 7. उच्छ्वास 8. दृष्टि 9. आहारक

~~गा.805~~ 10. पर्याप्त 11. सुप्त 12. जन्म 13. स्थिति 14. वेद 15. संज्ञा 16. कषाय 17. आयु

गा.805 18. ज्ञान 19. योग 20. उपयोग 21. शरीर 22. संस्थान 23. संहनन 24. मान 25. लेश्या 26. परिणाम 27. वेदना 28. समुद्घात ~~29.~~ कर्म

गा.806 29. निर्वेष्टन 30. उद्वर्तन 31. आस्रवकरण 32. अलंकार 33. शयनस्थ 34. आसनस्थ

(द्वारगाथा) ~~36. स्थानस्थ~~ 35. चंक्रमण करते जीव

इन द्वारों के आश्रय से विचारणा कि कौन सी सामायिक कहाँ?

अव. 1. क्षेत्रद्वार –

गा.807/8

	सम्यक्त्व/श्रुत		चारित्र	
	प्रतिपद्यमान	प्रतिपन्न	प्रतिपद्य.	प्रतिपन्न
ऊर्ध्वलोक	✓ (i)	✓	✓ (ii)	✓ भ. (iii)
अधोलोक	✓	✓	✓	✓
तिर्यग्लोक	✓	✓	✓	✓

(i) ऊर्ध्वलोक में मेरुपर्वत-देवलोकादि। अधोलोक में महाविदेह में रहे अधोलौकिक ग्राम-नरकादि।

(ii) यहाँ देशविरति तिर्यंच में भी होती है। सर्वविरति सिर्फ मनुष्यों में ही होती है।

मूल निर्युक्ति में लिखा है – 'विरई मणुस्सलोए' विरति यानि सर्वविरति मनुष्य लोक में ही होती है। यहाँ सर्वविरति मनुष्य को ही होती है ऐसा अर्थ लेना। क्षेत्र नियम तो विशिष्ट श्रुतज्ञानी ने नहीं कहा। किंतु वह तीनों लोक में हो सकती है क्योंकि कथाओं में मेरु पर भी दीक्षाग्रहण सुना जाता है।

(iii) देशविरति नियमा होती है क्योंकि पंडकवनादि में तिर्यंच होते हैं। सर्वविरति के लिए भजना है।

टीप्पणक → हरिभद्रसू.म. ने लिखा है 'विरई मणुस्सलोए' यानि सर्वविरति मनुष्यों को ही होती है, क्षेत्रनियम तो विशिष्टश्रुतज्ञानी जानें। इस पर टीप्पणी – निर्युक्तिकार ने क्षेत्रनियम किया कि विरति मनुष्यलोक में ही होती है किंतु यह युक्त नहीं है क्योंकि देवादि के अपहार आदि से 2½ द्वीप के बाहर निकले मनुष्य को नंदीश्वरादि पर शाश्वत प्रतिमादि के दर्शन से विरति प्राप्त हो सकती है।

चूर्णि →

	सम्यक्त्व/श्रुत	चारित्र
ऊर्ध्व/अधोलोक (i)	✓ (ii)	×
तिर्च्छलोक	✓	✓

(i) मेरु पर्वत को तिर्च्छलोक में गिनना।
(ii) प्रतिपद्यमान - प्रतिपन्न दोनों समझना।

मलयगिरीय टीका अव. 2, दिशा द्वार – दिशा के निक्षेप –

गा. 409 (a) नाम (b) स्थापना (c) द्रव्य (d) क्षेत्र (e) तापक्षेत्र (f) प्रज्ञापक (g) भाव दिशा। यह भाव दिशा 18 प्र. की होती है।

(a)-(b) नाम-स्थापना प्रतीत है।

(आचारांग नि. 41)

(c) द्रव्य दिक् – 10 दिशाओं को उत्पन्न करने का हेतु होने से वह द्रव्य ही द्रव्य दिक् होता है। 2प्र. – जघन्य से 13 प्रदेश, उत्कृष्ट से अनंत प्रदेशात्मक किंतु अनंतप्रदेश भी क्षेत्र अनुसार जघन्य से 13 प्रदेश में अवगाढ़ होना चाहिए। (स्पष्टता टीप्पणक में ↓) उत्कृष्ट से असंख्य प्रदेशावगाढ़।

टीप्पणक → ~~इसकी स्थापना~~ –

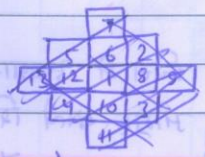

→ प्र. जिस द्रव्य से दिशा का प्रभव हो, उस द्रव्य को दिकत्व = दिशापन से विवक्षित करते हैं

है। वह 13प्रदेश का ही होना चाहिए (क्षेत्र से), हीन या अधिक नहीं। इसमे क्या युक्ति है?

उ. मध्य में एक परमाणु रखें। फिर आस-पास चार परमाणु रखें —

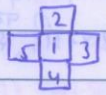

इन परमाणुओं से 6दिशा ही उत्पन्न होती है (पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, ऊर्ध्व-अ विदिशा नहीं। (6दिशा का ही मिलन होता है।)

प्र. इससे विदिशा उत्पन्न क्यों नहीं होती?

उ. (मध्य में रहे) एक परमाणु से विदिशा के उत्थान का अभाव होता है।

प्र. विदिशा के उत्थान का अभाव क्यों?

उ. क्योंकि एक परमाणु 6दिशा के संबंध वाला ही कहा गया है 'एगपएसोगाढं सत्तपएसा य से फुसणा'। यदि एक परमाणु का विदिशा से संबंध होता तो 11प्रदेश की स्पर्शना होती, 7की नहीं।

अतः 5प्रदेशों से 10दिशा का मिलन नहीं होता। पुनः 9प्रदेश डाले —

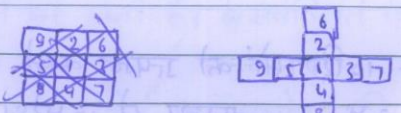

इन 9प्रदेशों से भी 10दिशा का मिलन नहीं होता क्योंकि उनके कोण अंतर निविष्ट हैं। अतः विदिशा के मिलन के लिए अन्य 4 परमाणु कोणों पर रखे जाते हैं। इस प्रकार 10दिशा का उत्पत्ति क्षेत्र 13 परमाणुओं से होता है, हीनाधिक से नहीं।

इसकी स्थापना परमार्थ से चित्त में अवधारण करना। वृत्तिकृत् हरिभद्रसू.म. ने तो इसके उपदर्शन के बद्ध आग्रह वाले शिष्यों के अबोध के लिए यह दिखाई है क्योंकि इसे यथावत् दिखाना अशक्य है। अथवा प्राज्ञों द्वारा ऊहा करने योग्य है,

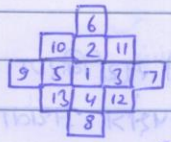

[★ इस प्रकार हेमचंद्रसूरि म. ने अंतिम ५ परमाणु कोण पर रखने को कहे। उससे स्थापना -

ऐसी स्थापना लगती है। तथा मलयगिरि म. और हरिभद्रसू. म. ने बताई स्थापना - एकैकः प्रदेशः विदिक्षु, मध्ये त्वेकः इत्येते पञ्च, तथा चतसृषु दिक्ष्वायतावस्थितौ द्वौ द्वौ। इससे भी ऐसी ही स्थापना लगती है]

मलयगिरीय टीका

(७) क्षेत्र दिक् - (आचारांग नि. ४२) तिर्यग्लोक के मध्य में ८ प्रदेशात्मक रुचक है। मेरु के मध्य प्रदेश में २ प्रतर के २-२ प्रदेश, कुल ८ प्रदेश का रुचक है। (आचारांग नि. ४३) यह गोस्तनाकार होता है।

पूर्वादि ४ दिशा में पहले २ प्रदेश फिर ४, ६, ८ ... इस प्रकार २-२ प्रदेश बढ़ते जाते हैं। ४ विदिशा चार अंतराल कोणों में १-१ प्रदेश रूप हैं। ऊर्ध्व और अधो दिशा रुचक के ४ प्रदेश की श्रेणि रूप ऊपर और नीचे है।

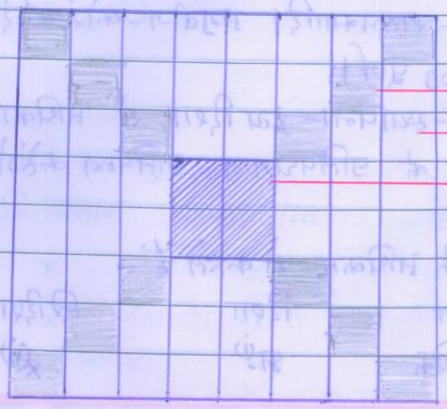

	~~आदि~~ प्रदेश	आकार
दिशा	२, ४, ६, ८...	गाड़े की धूसरी
विदिशा	१	मुक्तावली
ऊर्ध्व-अधो	४	रुचकसमान

स्थापना -

* ऐन्द्री (पूर्व) दिशा जंबूद्वीप की जगति के विजय द्वार अनुसार जानना।

(९) तापक्षेत्र दिक् - ताप यानि सूर्य किरण के स्पर्श से जनित प्रकाशात्मक परिताप उससे उपलक्षित क्षेत्र तापक्षेत्र अथवा तापयति इति तापः-सूर्यः तदनुसारेण क्षेत्रात्मिका दिक् तापक्षेत्रदिक्। यह सूर्य के आधीन होने से अनियत होती। जिस दिशा में सूर्य उगे, वह पूर्व। उसके अनुसार अन्य दिशा भी जानना। सभी भरत-ऐरावत-विदेहादि में रहते मनुष्यों को मेरु उत्तर में, लवणसमुद्र दक्षिण में होगा।

(५) प्रज्ञापकदिक् - प्रज्ञापयति सूत्रार्थं शिष्येभ्यः इति प्रज्ञापकः आचार्यः, तदाश्रये दिक् प्रज्ञापकदिक्। आचार्य जिस दिशा के अभिमुख हो वह पूर्व। शेष तदनु जानना।

(७) भावदिक् - १८ प्र. दिश्यते अयंअमुकः संसारी इति यया सा दिक्, पृथ्वीत्वादि लक्षण ~~रूप~~ पर्याय। यह १८ प्र. की है - पृथ्वी, अप्, तेउ, वायु, मूलबीज, स्कंधबीज, अग्रबीज, पर्वबीज, वाली द्वीन्द्रिय (कृम्यादि) त्रीन्द्रिय (कीड़ी वि.), चउरिंद्रिय (भ्रमरादि), पंचेंद्रिय तिर्यंच, नारक, देव, सम्मूर्च्छिम मनुष्य, कर्मभूमि के मनुष्य, अकर्मभूमि के मनुष्य, अंतरद्वीप मनुष्य।

मूलं बीजं येषां ते मूलबीज - उत्पलकंदादि।

स्कंधबीज - शल्लक्यादि। अग्रबीज - कोरंटकादि। पर्वबीज - ईक्षु वि.।

→ द्वार गा. ८०७ पूर्ण।

* यहाँ नाम-स्थापना-द्रव्य दिशा से अधिकार नहीं है। शेष ५ दिशाओं में सामायिक के प्रतिपद्यमान-प्रतिपन्न कहेंगे।

अब क्षेत्रदिशा के अधिकार से कहते हैं -

गा. ८१०

प्रतिपद्यमान	दिशा	विदिशा	ऊर्ध्व-अधो
चारों सामायिक	भ.(i)	x(ii)	x(iii)

(* स्पष्टता टीप्पणक में Pg. 99 पर)

प्रतिपन्न	पूर्व-पश्चिम	उत्तर-दक्षिण	विदिशा	ऊर्ध्व-अधो
प्रथम ३ सामायिक	✓	✓	×(ii)	×(ii)
सर्वविरति सा.	✓	भ.(iii)	×(ii)	×(ii)

(i) 'प्रतिपद्यमान - हो ही' ऐसा नियम नहीं। कभी नहीं भी हो सकता है।
(ii) विदिशा और ऊर्ध्व-अधो दिशा में प्रतिपद्यमान और प्रतिपन्न कोई नहीं होते क्योंकि विदिशा १ प्रदेश वाली और ऊर्ध्व-अधो दिशा ५ प्रदेश वाली है अतः उनमें जीव का अवगाहना नहीं हो सकती। किंतु प्रतिपद्यमान या प्रतिपन्न की स्पर्शना हो सकती है।
(iii) एकांत दुषमारि काल में भरत-ऐरावत क्षेत्रों में सर्वविरति का उच्छेद हो जाने से यहाँ भजना कही है।

★ तापक्षेत्र और प्रज्ञापक दिशा अनुसार –

५ सामायिक –	प्रतिपद्यमान	प्रतिपन्न
विदिशा	भ.	✓
दिशा	भ.	✓
~~ऊर्ध्व-अधो~~		
ऊर्ध्व-अधो में	प्रतिपद्यमान	प्रतिपन्न
सम्यक्त्व-श्रुत सा.	भ.	✓
देशविरति सर्वविरति	×*↑	भ.

★ भावदिक् अनुसार –

	सम्यक्त्व-श्रुत सा.		देशविरति-सर्वविरति सा.	
	प्रतिपद्यमान	प्रतिपन्न	प्रतिपद्यमान	प्रतिपन्न
पृथ्व्यादि ४	×	×	×	×
द्वीन्द्रियादि ३	×	भ(i)	×	×
पंचेंद्रियतिर्यंच	✓ भ.	✓	भ. / ×(ii)	✓ / ×(ii)
नारक-देव-अकर्मभूमि-अंतरद्वीप मनुष्य	भ.	✓	×	×

(Δ देखो टीप्पणक Pg. No. 100 पर)

कर्मभूमि मनुष्य	भ.	✓	भ.	✓
संमूर्च्छिम मनुष्य	×	×	×	×

(i) भजना सास्वादनसम्यक्त्व की अपेक्षा।
(ii) भजना और '✓' नियम देशविरति के लिए। सर्वविरति ×।

अब 2. दिशा द्वार पूर्ण। 3. काल द्वार – (देखें द्वार गा. 804, Pg. No. 92)

गा. 811

काल	सम्यक्त्व-श्रुत प्रतिपद्यमान	सम्यक्त्व-श्रुत प्रतिपन्न	देशविरति-सर्वविरति प्रतिपद्यमान	देशविरति-सर्वविरति प्रतिपन्न
सुषमसुषम	भ. (i)	✓	×	भ. (ii)
सुषम	भ.	✓	×	भ.
सुषम दुषम	भ.	✓	भ.	✓
दुषम सुषम	भ.	✓	भ.	✓
दुषम	भ.	✓	भ. (iii)	✓
दुषम दुषम	भ. (Δ1)	✓	×	भ.

(i) सम्यक्त्व और श्रुत सामायिक युगलिक भी प्राप्त कर सकते हैं किंतु जब उनकी आयु देशन्यूनपूर्वकोटी शेष हो, तभी वे स्वीकार सकते हैं, उससे पहले नहीं।

(ii) युगलिक मनुष्य देश-सर्वविरति के प्रतिपद्यमान भी नहीं होते और प्रतिपन्न भी नहीं। किंतु संहरण की अपेक्षा से सभी काल में प्रतिपन्न हो सकते हैं।

(iii) दुषम काल में देश-सर्वविरति का प्रतिपद्यमान अवसर्पिणी में ही होता है।

★ ऊपर की व्यवस्था सभी उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी या अवस्थित काल वाले क्षेत्र में समझना यानि $2\frac{1}{2}$ द्वीप में।

काल रहित क्षेत्र यानि $2\frac{1}{2}$ द्वीप के बाहर के क्षेत्र की व्यवस्था –

	प्रतिपद्यमान	प्रतिपन्न
सम्यक्त्व-श्रुत-देशविरति सा.	भ. (i)	✓ (i)
सर्वविरति सा.	×	भ. (ii)

(i) यह पंचेंद्रिय तिर्यंच की अपेक्षा जानना।
(ii) नंदीश्वरादि द्वीप पर विद्याचारणादि मुनि जाने से।

अव. ३. काल द्वार पूर्ण ॥ ५. गतिद्वार
गा. 812 चारों गति में सम्यक्त्व-श्रुत सा. के प्रतिपद्यमान भजना।
प्रतिपन्न ✓।
(पृथ्व्यादि अन्तर्गति को छोड़कर)
३गति में देशविरति के प्रतिपद्यमान भ.।
प्रतिपन्न ✓।
मनुष्य गति में सर्वविरति के प्रतिपद्यमान भ.।
प्रतिपन्न ✓।

टिप्पणक →(* अनुसंधान Pg. No. 97 पर)
ऊर्ध्व-अधो दिशा में देशविरति-सर्वविरति सा. के प्रतिपद्यमान का निषेध किया, उस पर टिप्पणी —

पू. प्रज्ञापक धर्म कहने पर उससे ऊपर या नीचे की भूमि पर रहे जीव को देश-सर्व विरति होना संभव है? तथा तापक्षेत्र के आश्रय से सूर्य के ऊपर-नीचे भी यह घटता ही है तो निषेध क्यों?

उ. देश-सर्वविरति विशिष्ट गुण रूप है अतः वे विशिष्ट विनय बिना संभव नहीं है। जो प्रज्ञापक के ऊपर या अत्यंत सम श्रेणि में थोड़ा नीचे रहता है, वह प्रज्ञापक की अवज्ञा करने वाला होने से कैसे देश-सर्व विरति प्राप्त करेगा? तथा सूर्य के ऊपर या अत्यंतसम श्रेणि में नीचे रहे ऐसे देश-सर्वविरति को स्वीकारने वाले मनुष्य-तिर्यंचों को विचारने पर असंभव ही लगता है। इसलिए यहाँ प्रतिषेध किया है।

~~सामायिक~~ सम्यक्त्व-श्रुत सा. को स्वीकारने वाले देव और नारक प्रज्ञापक से अत्यंत व्यवहित होने के कारण उन्हें आशातना नहीं लगती अतः इन सामायिक के प्रतिपद्यमान संभव है।

ऐसा हमारा संप्रदाय है। सूक्ष्मबुद्धि वाले अन्य प्रकार से भी विचार सकते हैं।

△ दुषम दुषम आरे में अत्यंत क्लिष्ट परिणाम होने से बिलवासी जीवों में सामायिक के अभाव की शंका करना नहीं चाहिए क्योंकि प्रज्ञप्ति में कहा है - 'उस्सन्नं धम्मसन्नपरिवज्जियं' अर्थात् वे जीव प्राय: धर्मसंज्ञा से रहित होते हैं। (उस्सन्न यानि प्राय:) यहाँ प्राय: के ग्रहण से सम्यक्त्व के प्रतिपत्ता हो भी सकते हैं।

मलयगिरीय टीका अव. ४. गतिद्वार पूर्ण। ५. ६. भव्य और संज्ञी द्वार - (देखें द्वार गा. ८०४)

गा. ८१३ ५. - चारों सामायिक में से किसी एक, २, ३ या ४ का भव्य जीव प्रतिपद्यमान भजना से होता है। पूर्वप्रतिपन्न सदैव होते हैं।
'चारों सामायिक में से किसी एक का' यह व्यवहार नय से कहा गया क्योंकि निश्चय से वे दोनों अनुगत हैं।

६. - संज्ञी भी चारों में किसी १, २, ३ या ४ का प्रतिपद्यमान भजना।
प्रतिपन्न ✓।
असंज्ञी सास्वादन सम्यक्त्व से सम्यक्त्व-श्रुत सा. का प्रतिपन्न भजना।
नोसंज्ञीनोअसंज्ञी - भवस्थ केवली - सम्यक्त्व ~~श्रुत~~ सर्वविरति सा. प्रतिपन्न ✓।
- सिद्ध सम्यक्त्व सा. " ✓।

अव. ७, ८. उच्छ्वास और दृष्टि द्वार -

गा. ८१४ ७. उच्छ्वास → श्वासोश्वास पर्याप्ति से पर्याप्त - चारों सा. - प्रतिपद्यमान भ.।
प्रतिपन्न ✓।
अपर्याप्त - चारों सा. - प्रतिपद्यमान ✗।
सम्यक्त्व श्रुत सा. - प्रतिपन्न भ. देव-नारक के जन्म में।
सिद्ध - चारों सामायिक - प्रतिपद्यमान ✗
सम्यक्त्व सा. - प्रतिपन्न ✓। (* हरिभद्रीय टीका देखो Pg No. 101)
अयोगी केवली - सम्यक्त्व चारित्र सा. - प्रतिपन्न भ.।

८. दृष्टि → २ नय व्यवहार और निश्चय
व्यवहार से अज्ञानी ज्ञान प्राप्त करता है। सामायिकरहित सामायिक स्वीकारता है
निश्चय से ज्ञानी " " " ") सामायिक वाला " "

भद्रीय टीका

* → सिद्ध में चारों सामायिक के प्रतिपद्यमान और प्रतिपन्न का निषेध है।

टिप्पणक प्र. जैसे शैलेशी में रहे अयोगी केवली को सम्यक्त्व और चारित्र सामायिक है वैसे सिद्ध भी सम्यक्त्व सामायिक के प्रतिपन्न हो सकते हैं। तो सिद्ध में चारों सामायिक का निषेध क्यों किया?

उ. सम्यक्त्व सिवाय 3 सामायिक संसारी जीवों को ही संभव है। अतः उनके साहचर्य सम्यक्त्व सामायिक भी यहाँ संसारी जीव संबंधी ही विचारा जाता है। वैसी सम्यक्त्व सामायिक सिद्ध में नहीं होती इसलिए सिद्ध में चारों सामायिक का निषेध किया है।

मलयगिरीय टीका अव. 9. 10. आहारक और पर्याप्त द्वार –

गा. 815 9. आहारक – चारों सामायिक – प्रतिपद्यमान भ. ।
प्रतिपन्न ✓ ।

अनाहारक – चारों सामायिक – प्रतिपद्यमान × ।
सम्यक्त्व श्रुत सा. – प्रतिपन्न भ. । अपांतराल विग्रह गति में ।
देश-सर्व विरति सा. – " × ।
सम्यक्त्व-सर्वविरति सा. – " भ. – केवली समुद्घात या शैलेशी अवस्था में ।
सम्यक्त्व सा. – प्रतिपन्न ✓ – सिद्ध ।

10. पर्याप्त – चारों सामायिक – प्रतिपद्यमान भ. ।
प्रतिपन्न ✓ ।

अपर्याप्त – सम्यक्त्व श्रुत सा. – प्रतिपन्न भ. – सास्वादन सम्यक्त्व ।
देश-सर्व विरति – " × ।
चारों सामायिक – प्रतिपद्यमान × ।

अव. 11. 12. सुप्त और जन्म द्वार – (देखें द्वार गा. 804)

गा. 816 11. सुप्त → सुप्त 2 प्र. द्रव्य सुप्त – निद्रामग्न, भाव सुप्त – मिथ्यादृष्टि और अज्ञानी ।
जागृत 2 प्र. द्रव्य जागृत – निद्रारहित, भाव जागृत – सम्यग्दृष्टि और ज्ञानी ।

निश्चय नय का मत –
द्रव्य और भाव जागृत – चारों सामायिक – प्रतिपद्यमान भ. ।
प्रतिपन्न ✓ ।
द्रव्य सुप्त – चारों सामायिक – प्रतिपद्यमान x क्योंकि निद्रा के प्रभाव से चित्तशुद्धि वि. नहीं होती।
– प्रतिपन्न ✓
भाव सुप्त – चारों सामायिक – प्रतिपद्यमान x
– प्रतिपन्न x

व्यवहार नय का मत –
द्रव्य सुप्त – x
भाव सुप्त – चारों सामायिक – प्रतिपद्यमान भ. ।
प्रतिपन्न x ।

12. जन्म द्वार → जन्म 4 प्र –
(a) अंडज – हंसादि } सम्यक्त्वश्रुत देशविरतिसा. – प्रतिपद्यमान भ.
(b) पोतज – हाथी वि. } प्रतिपन्न ✓ ।
(c) जरायुज – मनुष्यादि – चारों सामायिक – प्रतिपद्यमान भ.
– प्रतिपन्न ✓ ।
(d) औपपातिक – नारकादि – सम्यक्त्वश्रुत – प्रतिपद्यमान भ. ।
– प्रतिपन्न ✓ ।

अब 13. स्थिति द्वार – (देखें द्वार गा. 805)
गा. 817 → आयु सिवाय 7 कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति – प्रतिपद्यमान x
प्रतिपन्न x
क्योंकि अतिसंक्लिष्ट परिणाम है।

→ आयु की उत्कृष्ट 33 सा. – अनुत्तर देव – सम्यक्त्व श्रुत सा. – प्रतिपन्न ✓
7वीं नारक – " – प्रतिपन्न ✓ ।
प्रतिपद्यमान भ.

→ आठों कर्म की मध्यम स्थिति – चारों सा. — प्रतिपद्यमान भ. ।
— प्रतिपन्न ✓ ।

→ घातिकर्म की जघन्य स्थिति – सम्यक्त्व-श्रुत-सर्व विरति – प्रतिपद्यमान ×
प्रतिपन्न ✓ ।

क्योंकि ये सूक्ष्मसंपरायादि होते हैं।(* हरिभद्रीय टीका)

→ अघातिकर्म की जघन्य स्थिति - सम्यक्त्व - सर्वविरति सा. — प्रतिपन्न ✓ ।
प्रतिपद्यमान × ।

क्योंकि ये चरमसमय में अयोगी केवली होते हैं।

→ आयुकर्म की जघन्य स्थिति (संसारी में) – क्षुल्लक भव — चारों सामायिक - प्रतिपद्य. ×
— प्रतिपन्न × ।

हरिभद्रीय टीका → शेषकर्मराशिजघन्यस्थितिस्तु देशविरतिरहितस्य सामायिकत्रयस्य पूर्वप्रतिपन्नः स्यात्, दर्शनसप्तकातिक्रान्तः क्षपकः अन्तकृत् केवली, तस्य तस्यामवस्थायां देशविरतिपरिणामाभावात्, जघन्यस्थितिकर्मबन्धकत्वाच्च जघन्यस्थितित्वं तस्य न तूपात्तकर्मप्रवाहापेक्षया —

आयु सिवाय के शेष कर्म की जघन्य स्थिति वाले देशविरति सिवाय 3 सामायिक के प्रतिपन्न होते हैं। ये दर्शन सप्तक को अतिक्रांत क्षपक ऐसे अंतकृत् केवली होते हैं। उन्हें उस अवस्था में देशविरति के परिणाम का अभाव होता है। उनका जघन्य स्थितिपन जघन्यस्थिति के बंध की अपेक्षा से लेना, सत्ता में ग्रहण किए हुए कर्म के प्रवाह की अपेक्षा से नहीं।

स्पष्टीकरण → प्र. यहाँ शेष कर्म की जघन्य स्थिति किसकी अपेक्षा से लेना, सत्ता में रहे कर्म की या नए बंधाते कर्म की अपेक्षा?

उ. जिसकी अपेक्षा यहाँ अधिक लघु स्थिति हो वह लेना।

– अब दोनों में लघु स्थिति किसकी होती है, वह देखते हैं —

कोई क्षपकादि यद्यपि शुभ अध्यवसाय से सत्ता में रहे कर्मों की स्थिति को

कम करता है किंतु वह भी उस समय बंधाते हुए कर्म की स्थिति की अपेक्षा अधिक ही होती है।

अत: यहाँ जघन्यपद की विचारणा होने से बंधस्थिति ही लेना, सत्ता की नहीं।

प्र. यहाँ अन्तकृत् केवली ही क्यों लिये? सामान्य केवली क्यों नहीं?

उ. अंतकृत् केवली एक झटके में ही समस्त कर्म क्षय कर जल्द ही मोक्ष प्राप्त करते हैं अत: शेष क्षपकों से विशुद्ध अध्यवसाय होने से अतिलघुतर स्थिति के बंधक होते हैं। इसलिए उनका ग्रहण किया।

प्र. अनिवृत्तिबादर से तो सभी क्षपक तुल्य परिणाम वाले होते हैं, ऐसा आगम है।

उ. यह सही है किंतु अपूर्वकरण में क्षपकों में भी परस्पर विशेष है क्योंकि उसके अध्यवसाय स्थान असंख्य लोकाकाश प्रमाण स्थान से निष्पन्न होते हैं। इसलिए ही 'दर्शनसप्तक अतिक्रांत' कहा है क्योंकि दर्शन सप्तक का अतिक्रमण करने वाला अपूर्वकरण में मिलता है। अत: अपूर्वकरण में बंध में से जिन कर्मप्रकृतियों का व्यवच्छेद होता है, उन कर्मप्रकृतियों की यह जघन्य स्थितिबांधने वाला होता है। इसलिए विशेष से इसका ग्रहण करना।

प्र. जिन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया है, इन अंतकृत् केवली का ग्रहण क्यों नहीं करते, उनमें भी दोनों विशेषण धरते हैं: दर्शनसप्तक अतिक्रांत और क्षपक

उ. दर्शनसप्तक अतिक्रांत और क्षपक, इन दोनों अवस्था में कर्म का जघन्य बंध ~~अन्यत्र नहीं~~ प्राप्त होता है, अन्यत्र नहीं -

जिसने दर्शन सप्तक का क्षय नहीं किया, वह मंद अध्यवसाय वाले होने से उन्हें जघन्य बंध संभव नहीं है।

क्षपक अवस्था से उत्तीर्ण ऐसे क्षीणमोह या केवलज्ञानी को कर्म का बंध ही नहीं होता, अत: उनका जघन्य बंध नहीं होता।

मलयगीरीय टीका अव. १५.१३. स्थिति द्वार पूर्ण। १५.१५.१६. वेद-संज्ञा और कषाय द्वार - (देखें द्वारगा. ८०५ Pg. No. 93)

गा-818 14. वेद — तीनों वेद — चारों सा. — प्रतिपद्यमान भ. ।
प्रतिपन्न ✓ ।
अवेदक — सम्यक्त्व सर्वविरति सा. — प्रतिपद्यमान x ।
प्रतिपन्न ✓ । सयोगीकेवली हमेशा होते हैं।
श्रुतसा. — प्रतिपन्न भ. — क्षीणवेद क्षपक कभी-कभी होते हैं।
देशविरति सा. — प्रतिपद्यमान + प्रतिपन्न x ।

15. संज्ञा — आहार-भय-मैथुन-परिग्रह 4 संज्ञा में चारों सा. — प्रतिपद्यमान भ. ।
प्रतिपन्न ✓ ।

16. कषाय - कषायी - चारों सामायिक — प्रतिपद्यमान भ.
प्रतिपन्न ✓
अकषायी - छद्मस्थ वीतराग - सम्यक्त्वश्रुत सर्वविरति सा. — प्रतिपद्यमान x
प्रतिपन्न भ.
सयोगी केवली - सम्यक्त्व सर्वविरति सा. — प्रतिपद्यमान x
प्रतिपन्न ✓ ।

चूर्णि → संज्ञा - चारों संज्ञा में उपयुक्त होने पर चारों सामायिक - प्रतिपद्यमान x
प्रतिपन्न ✓ ।
" उपयुक्त न होने पर " प्रतिपद्यमान भ.
प्रतिपन्न ✓ ।
अन्य मत - नोसंज्ञा में उपयुक्त होने पर सम्यक्त्वश्रुत सर्वविरति सा. - प्रतिपद्य x
(७वें गुणस्थान) प्रतिपन्न ✓
अन्य मत - नोसंज्ञा में उपयुक्त होने पर सम्यक्त्व- सर्वविरति सा. - प्रतिपद्य x
(केवली और क्षीणमोह) प्रतिपन्न ✓ ।

मलयगिरीय टीका अव. 17. 18. आयु और ज्ञान द्वार —

गा. 819 17, आयु — संख्यातवर्ष आयु वाले मनुष्य - चारों सा. — प्रतिपद्यमान अ.
प्रतिपन्न ✓
असंख्य " " — सम्यक्त्व श्रुत — प्रतिपद्यमान अ.
प्रतिपन्न ✓

18. ज्ञान — (a) सामान्य से
निश्चय नय — ज्ञानी — चारों सा. — प्रतिपद्यमान अ.
प्रतिपन्न ✓
व्यवहार नय — अज्ञानी — सम्यक्त्व श्रुत — प्रतिपद्यमान अ
ज्ञानी — देश-~~सर्व~~ विरति — " अ.
ज्ञानी — सर्व चारों सा. — प्रतिपन्न ✓

(b) विशेष से
मतिश्रुत ज्ञानी — चारों सामायिक — प्रतिपद्यमान अ. (पुगपद्)
" प्रतिपन्न ✓
अवधिज्ञानी — सम्यक्त्व श्रुत सा. — प्रतिपद्यमान अ. (पुगपद्)(i)
प्रतिपन्न ✓ |

(i) कोई मिथ्यादृष्टि देव सम्यग्दृष्टि बने तो सम्यक्त्व-श्रुत और अवधिज्ञान एक साथ होंगे।
अवधिज्ञानी - ~~सर्व~~ देश विरति — प्रतिपद्यमान करता नहीं है क्योंकि देश या ~~सर्व~~ विरति के कारण ही मनुष्य या तिर्यंच को अवधिज्ञान पुगपद् होता है। प्रतिपन्न ✓ |

मनःपर्यवज्ञानी - सम्यक्त्व श्रुत सर्वविरति - प्रतिपद्यमान ×
प्रतिपन्न ✓
अथवा पुगपद् तीर्थंकर की तरह सर्वविरति और मनःपर्यवज्ञान |

केवली — भवस्थ हो तो सम्यक्त्व-सर्वविरति प्रतिपन्न ✓ |
सिद्ध सम्यक्त्व " ✓ |

21. शरीरद्वार –

अव. 19.20. योग और उपयोग द्वार – (देखें द्वार गा. 805 Pg. 93)

गा. 820 19. त्रिविध योग में चारों सा. प्रतिपद्यमान भ. प्रतिपन्न ✓

विशेष से द्विविध योग में – सम्यक्त्व श्रुत – प्रतिपद्य ✗
(काय-वाग्)
प्रतिपन्न भ. सास्वादन सम्यक्त्व

एकविध योग – ✗

विशेष से त्रिविध योग में –

औदारिककाय योग – चारों सा. – प्रति भ. पूर्व. ✓

वैक्रिय काय योग – सम्यक्त्व श्रुत – प्रति. भ. पूर्व ✓

देश सर्वविरति – प्रति. ✗
पूर्व. ✓ (अंबड श्रावक, विष्णुकुमार मुनि व्रत)

आहारककाययोग - सम्यक्त्व श्रुत सर्वविरति - प्रति. ✗
पूर्व. ✓

तैजसकार्मणकाययोग - सम्यक्त्वश्रुत – प्रति. ✗
पूर्व. भ. (विग्रह गति)

सम्यक्त्व सर्वविरति – प्रति. ✗
पूर्व. ✓ (केवली समुद्घात)

20. उपयोग – साकार-अनाकार दोनों उपयोग में चारों सा. – प्रति. भ. पूर्व. ✓

प्र. सभी लब्धि साकारोपयोग में उपयुक्त को होती है, ऐसा आगम वचन होने से अनाकार उपयोग में सामायिक लब्धि का विरोध होगा।

उ. वह आगम वचन बढ़ते हुए परिणाम वाले जीव विषयक है किंतु अवस्थित ऐसे औपशमिक परिणाम की अपेक्षा से विरोध नहीं है। अंतरकरण में चारों सामायिक लब्धि होती है और वहाँ परिणाम अवस्थित होता है क्योंकि मिथ्यात्व का उदय न

(* चूर्णि में एक मतांतर Pg. No. 112 पर)

होने से परिणामहानि नहीं होती और सम्यक्त्व मोहनीय का उदय न होने से वृद्धि नहीं होती। (*^)

21. शरीर द्वार —

औदारिक – चारों सा. — प्रति भ. पूर्व. ✓

वैक्रिय – सम्यक्त्वश्रुत — प्रति भ. पूर्व. ✓ (देवादि)

देशसर्वविरति — प्रति. x पूर्व. भ. (चारणमुनि वि.)

(वैक्रिय रचना में प्रमाद होने से।

शेष शरीर की विचारणा योग द्वार (Pg. No. 107 पर) अनुसार।

ध्रुव. 22.23.24. संस्थान, संहनन और मानद्वार – (देखें द्वार गा. 805)

गा. 821 22. 23. सभी संस्थान और संहनन में चारों सा. – प्रति. भ.
पूर्व. ✓।

24. मान = शरीर की अवगाहना।

जघन्य अंगुल का असंख्यातवा भाग, उत्कृष्ट 3 गाऊ (मनुष्य की)

इन दोनों को छोड़कर मध्यम अवगाहना वाले मनुष्य – चारों सा. – प्रति भ.
पूर्व. ✓

जघन्य अवगाहना – गर्भज मनुष्य – सम्यक्त्वश्रुत – प्रति x पूर्व. भ.।

उत्कृष्ट " " " प्रति भ. पूर्व ✓।

जघन्य " – नारक देव – " – प्रति x पूर्व. भ.।

मध्यम और उत्कृष्ट " – " – " – प्रति भ. पूर्व. ✓।

जघन्य " – तिर्यंच पंचेंद्रिय – " – प्रति x पूर्व भ.। (सास्वादन

मध्यम ~~और उत्कृष्ट~~ " – " – सम्यक्त्वश्रुत – प्रति भ. पूर्व ✓।

उत्कृष्ट " – " – ~~सम्यक्त्व श्रुत~~ देशविरति – प्रति भ. पूर्व ✓। (देशवि... नहीं

~~हरिभद्रीय वृत्ति~~ → ~~'उक्कोसोगाहणगा सेसं दुहावि' – उत्कृष्ट अवगाहना वाले तिर्यंच पंचेंद्रिय प्रमत्त~~ ~~सामायिक के प्रति भ. और पूर्व ✓। (देशविरति नहीं है)~~

लयगिरीय
टीका अव. 25. लेश्या द्वार –
गा.822 प्रतिपद्यमान – सम्यक्त्वश्रुत देशसर्वविरति
6 लेश्या तेजस वि. 3 शुभ लेश्या

प्रतिपन्न – चारों सा. – 6 लेश्या में।

प्र. मति-श्रुत ज्ञान की प्राप्ति की विचारणा में (भाग-1, Pg. No.) तेजस वि. 3 शुद्ध लेश्या में ही प्रतिपद्यमान कहा था। तो सम्यक्त्व-श्रुत सा. का प्रतिपद्यमान सभी लेश्या में क्यों?

उ. पहले लेश्या द्रव्य के से उत्पन्न आत्म परिणाम रूप भावलेश्या से कहा था। यहाँ अवस्थित कृष्णादि द्रव्य लेश्या से कहा है। क्योंकि कृष्णादि द्रव्य लेश्या अवस्थित होने पर भी तेजोलेश्यादि द्रव्य के संपर्क से तेजोलेश्यादि परिणाम संभव है। अर्थात् 7वीं नरक में नारकादि को पूरे भव में कृष्णादि द्रव्य लेश्या अवस्थित होने पर भी तेजोलेश्यादि द्रव्य के संपर्क से वह कृष्णादि लेश्या स्वआकार मात्र ही उत्पन्न करती है अर्थात् मात्र पुद्गलों का उदय होता है किंतु भाव में शुभ लेश्या ही रहती है। जैसे- उपाधि के वश से स्फटिक का रंग बदलता है किंतु वह कहलाता स्फटिक ही है वैसे यहाँ भाव में शुभ लेश्या होती है किंतु वह कृष्णादि लेश्या ही कही जाती है। वह शुभ लेश्या उसके आकार को प्राप्त कर लेती है।

अतः उन नारकादि को भाव से तेजो वि., द्रव्य से कृष्णादि सभी लेश्या में सम्यक्त्वादि सामायिक प्राप्त होती है। (स्पष्टता टीप्पणक में –)

टिप्पणक → प्र. पहले मतिश्रुत ज्ञान की प्राप्ति 3 शुभ लेश्या में कही। अभी 6 लेश्या में कही तो पूर्वापर विरोध क्यों नहीं?

उ. मनुष्यों को हर अंतर्मुहूर्त में लेश्या बदली होने से द्रव्य और भाव से 3 शुभ लेश्या में ही सम्यक्त्वादि की प्राप्ति होती है। देव-नारक को भी भाव से 3 शुभ लेश्या में ही प्राप्त होते हैं। द्रव्य से उन्हें छहों लेश्या में होते हैं। उन्हें जो द्रव्य लेश्या होती है, वह मृत्यु तक अवस्थित ही होती है, बदलती नहीं है।

प्र. द्रव्य लेश्या तो भावलेश्या की सहायक है। अतः 7वीं नरक में नारकादि को संक्लिष्ट कृष्णादि लेश्या का उदय सदा अवस्थित होने पर विशुद्ध भाव लेश्या कैसे संभव है?

उ. जैसे पर्वत नदी के पत्थर के घोलन न्याय रूप की विचित्रता से कृष्णादि कोई शुभ उदय द्वारा कृष्णादि लेश्या का उदय होने पर भी शुक्लादि विशुद्ध लेश्या द्रव्य खींच जाते हैं। उन द्रव्यों से शुक्लादि भाव लेश्या नारकादि को उत्पन्न होती है। उन लेश्या द्रव्यों को ग्रहण कर कृष्णादि लेश्या सर्वथा स्वरूप को छोड़कर तद्रूपता से परिणमती नहीं है, किंतु तदाकारमात्र को स्वीकारती है। जैसे जपा का फूल दूर स्थान होने पर दर्पण में लाल colour रूप आकार मात्र का संक्रमण करता है, वही फूल पास आ जाने पर स्पष्ट प्रतिबिंब का संक्रमण करता है। यहाँ वहाँ पूरा स्वरूप छोड़कर जपा का फूल उत्पन्न हुआ ऐसा नहीं कहते। वैसे ही यहाँ जीव द्रव्य के शुद्ध अध्यवसाय से आकृष्ट शुक्लादि लेश्या द्रव्य पहले मंद अनुभाव वाले होने पर कृष्णादि लेश्या उनके आकारमात्र को स्वीकारती है। फिर वे ही द्रव्य पुद्गल पर पहुँचने पर कृष्णादि लेश्या उस प्रतिबिंब को स्वीकारती है अर्थात् उसके अनुरूप अनुभाव को स्वीकारती है जिससे वह कृष्णादि लेश्या सम्यक्त्वादि के लाभ का घात करने में समर्थ नहीं बनती।
अर्थात् वह कृष्णादि लेश्या उसके प्रतिबिंब को स्वीकारती है किंतु खुद का स्वरूप छोड़कर सर्वथा उस तद्रूप नहीं बनती (दर्पण की तरह)

प्र. क्या कृष्णादि लेश्या का उदय होने पर अन्य लेश्या के द्रव्य खींच जाते हैं, जिसे ऐसा कहा जा रहा है?

उ. हाँ, से णूणं भंते! किण्हलेसा णीललेसं पप्प णो तारूवत्ताए ... परिणमति
हंता गोतमा! किण्हलेसा णीललेसं पप्प णो तारूवत्ताए ... परिणमति .....
आगारभावमायाए वा से सिया पलिभागमायाए वा से सिया, किण्हलेसा णं सा णो खलु णीललेसा, तत्थ गता उसक्कति वा अहिसक्कइ वा ... /
(इत्यादि पाठ हरिभद्रीय वृत्ति में है)
(अंतिम पंक्ति का अर्थ –) वह कृष्ण लेश्या है, नील लेश्या नहीं। ~~वहाँ गई हुई (अ~~

~~नीललेश्या रूप प्रतिबिंब को~~ वहीं रही हुई ~~मर~~ उसका उत्सर्पण होता है या (उस्सक्कइ) अवसर्पण होता है। इस प्रकार छहों लेश्या में जानना। (अहिसक्कइ)

यहाँ ~~जो~~ कृष्ण लेश्या का ~~है~~ 'उस्सक्कइ वा' इतना ही पाठ होगा। जो कहीं 'अवसक्कइ वा' पाठ मिलता है, वह अशुद्ध ही है। क्योंकि यहाँ मध्यम ५ लेश्या पहले या बाद की लेश्या की संगम ~~में~~ में होने पर क्रमशः अवसर्पण करती है और उत्सर्पण करती है। प्रथम कृष्ण लेश्या तो बाद वाली लेश्या की अपेक्षा से उत्सर्पण करती है, उसका अवसर्पण नहीं होता क्योंकि उसके पीछे कोई लेश्या ही नहीं है। इसी प्रकार अंतिम शुक्ल लेश्या का अवसर्पण ही होता है, उत्सर्पण नहीं क्योंकि उसके ऊपर कोई लेश्या नहीं है।

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि पहले (मतिश्रुत ज्ञान की प्राप्ति में) भावलेश्या की अपेक्षा से ३ शुद्ध लेश्या में प्राप्ति कही, यहाँ तो अवस्थित द्रव्य लेश्या की अपेक्षा से प्राप्ति कही।

चूर्णि → द्रव्य लेश्या से छहों लेश्या में प्रतिपद्य~~मा~~मान और प्रतिपन्न।
भाव लेश्या से छहों लेश्या में प्रतिपन्न।
प्रतिपद्यमान - शुक्ल लेश्या में।
अथवा
पूर्वप्रतिपन्न छहों लेश्या में होते हैं।
प्रतिपद्यमान - सम्यक्त्वश्रुत सामायिक - छहों लेश्या में।
- देशसर्वविरति " - तेजो वि. ३ लेश्या में।

मलयगिरीय का अव. गा. 823

26. परिणाम द्वार - (देखें द्वार गा. 805 Pg. 92)
वर्द्धमान परिणाम या अवस्थित परिणाम (पूर्वोक्त रीत्या अंतरकरण में Pg. 107 उपयोग द्वार देखें) वाला जीव चारों सामायिक का प्रतिपद्यमान है। हीयमान परिणाम वाला कुछ नहीं स्वीकारता क्योंकि वह संक्लिष्ट अध्यवसाय वाला होता है।

पूर्वप्रतिपन्न तो तीनों परिणाम में होते हैं।

चूर्णि → अवस्थित परिणाम वाला कुछ नहीं स्वीकारता। प्रतिपन्न हो सकता है।

→* (Pg. No. 108 पर अनुसंधान)
अनुपयोग अनाकार उपयोग में जीव कोई सामायिक प्राप्त नहीं करता।

प्रत्यगिरीय टीका अव. 27. वेदना द्वार और 28. समुद्घातकर्म द्वार — (देखें द्वार गा. 805 Pg. 92)

गा. 824 27. वेदना — साता - असाता दोनों प्र. की वेदना होने पर जीव
चारों सा. — प्रतिपद्य. भ. प्रतिपन्न ✓।

28. समुद्घात — जिस जीव ने अभी समुद्घात नहीं किया है, वह
चारों सा. — प्रतिपद्य. भ. प्रतिपन्न ✓।

जिसने 7 में से कोई भी एक समुद्घात किया हो, वह
चारों सा. — प्रतिपद्य. ×
प्रतिपन्न 2, 3 या 3 सामायिक का।
केवली समुद्घात में सम्यक्त्व-सर्वविरति का प्रतिपन्न।
शेष 6 " में सम्यक्त्व-श्रुत (2) या सम्यक्त्व-श्रुत-देशविरति (3) या
सम्यक्त्व-श्रुत-सर्वविरति (3) का प्रतिपन्न।

→ समुद्घात किया हो या न किया हो, वह चारों सामायिक का प्रतिपद्यमान या प्रतिपन्न हो सकता है। (चूर्णि)

अव. 29. निर्वेष्टन द्वार — 30. उद्वर्तना द्वार — (देखें द्वार गा. 806 Pg. 92)

गा. 825 29. निर्वेष्टन — निर्वेष्टन = खोलना 29. द्रव्य से कर्म को अलग करना
भाव से क्रोधादि को छोड़ना।
सामान्य से सभी कर्म छोड़ते हुए चारों सामायिक प्राप्त होती हैं।

विशेष से ज्ञानावरण को छोड़ते हुए श्रुत सा.
मोहनीय ,, ,, ,, शेष 3 सा.

भाव से क्रोध के अध्यवसायों को छोड़ते हुए चारों सा. प्रतिपद्य भ. प्रतिपन्न ✓

अनंतानुबंध्यादि को बांधते हुए कुछ प्राप्त नहीं करता।
शेषकर्म बांधते हुए जीव चारों सा. प्राप्त करता है।

30. उद्वर्तना द्वार – उद्वर्तन यानि उस गति में से निकलना।
अनुद्वर्तन यानि ,, ,, ,, नहीं निकलना।

नरक में से नहीं निकलता जीव सम्यक्त्व-श्रुत प्रति. भ. पूर्व. ✓।
नरक से निकलकर जीव तिर्यंच में जाकर सम्यक्त्व-श्रुत-देशविरति प्रति. भ.
मनुष्य में चारों सामायिक प्रति. भ.।

गा. 826-7 संज्ञी तिर्यंच गर्भज पंचेंद्रिय से नहीं निकलता जीव सम्यक्त्वश्रुत देशवि. -प्रतिभ. पूर्व. ✓।
,, निकलकर मनुष्य में 4, 3, 2 हो सकता है।

मनुष्य से नहीं निकलता जीव चारों सामायिक, 3, 2 प्रतिपद्य. भ. प्रतिपन्न ✓।
,, निकलकर जीव तिर्यंच-देव या नरक में 3 या 2 के प्रति. भ. पूर्व. ✓।

देव से नहीं निकलता जीव सम्यक्त्वश्रुत का प्रतिपद्य. भ. प्रतिपन्न ✓
,, निकलकर मनुष्य-तिर्यंच में 4, 3 या 2 के प्रतिपद्यमान भ. प्रतिपन्न ✓।

अब 31. आश्रव करण द्वार – (देखें द्वार गा. 806 Pg. 92)
गा. 828 जीव जो सामायिक प्राप्त करता है, तदावारक कर्म को निर्जरा करते हुए शेषकर्म को बांधते हुए भी जीव चारों सामायिक स्वीकारता है। प्रतिपन्न ✓।
इस प्रकार निर्जरा करते हुए भी चारों सामायिक का प्रतिपद्यमान भ. प्रतिपन्न ✓।

प्र. प्रतिपद्यमान , पू. पूर्वप्रतिपन्न , भ. भजना , ✓ नियमा

* विशेष गा. 804-829 Pg. No. 92 से 114 पर देखना।

प्र. निर्वेष्टन द्वार से इस द्वार में क्या अंतर है?

उ. निर्वेष्टन में क्रियाकाल लिया। यहाँ निष्ठाकाल लिया।

अब 32.-35. अलंकार-शयन-आसन-चंक्रमण द्वार - (द्वार गा. 806 Pg. 92)

गा. 829 जिसने अलंकार, शयन, आसन, चंक्रमण छोड़े हो या न छोड़े हो अथवा छोड़ते हुए, ऐसे जीव चारों सामायिक के प्रतिपद्यमान भ. प्रतिपन्न ✓।

P. कव द्वार पूर्ण।

गा. 804-829 की Summary (* ↑)

S.N.	द्वार		सम्यक्त्व प्र./पू.	श्रुत प्र./पू.	देशविरति प्र./पू.	सर्वविरति प्र./पू.
1.	क्षेत्र	ऊर्ध्व लोक	भ./✓	भ./✓	भ./✓	भ./भ.
		अधो "	भ./✓	भ./✓	भ./✓	भ./✓
		तिर्च्छा "	भ./✓	भ./✓	भ./✓	भ./✓
2.	क्षे+ दिशा	क्षेत्र-दिशा	भ./✓	भ./✓	भ./✓	भ./✓ पूर्वप. भ. उत्तर प.
		विदिशा	X/X	X/X	X/X	X/X
		ऊर्ध्व-अधो	X/X	X/X	X/X	X/X
		तापक्षेत्र+प्रज्ञापक-दिशा दिशा	भ./✓	भ./✓	भ./✓	भ./✓
		विदिशा	भ./✓	भ./✓	भ./✓	भ./✓
		ऊर्ध्व-अधो	भ./✓	भ./✓	X/भ.	X/भ.
		भाव - एकेंद्रिय	X	X	X	X
		विकलेंद्रिय	X/भ.	X/भ.	X	X
		पंचे. तिर्यंच	भ./✓	भ./✓	भ./✓	X
		नारक देव	भ./✓	भ./✓	भ./✓	X
		संमूर्च्छिम मनुष्य	X	X	X	X

	अकर्मभूमि + अंतर द्वीप के मनुष्य	भ./✓	भ./✓	X	X
	कर्मभूमि मनुष्य	भ./✓	भ./✓	भ./✓	भ./✓
3. काल	सुषम सुषम	भ./✓	भ./✓	X/भ.	X/भ.
	सुषम	भ./✓	भ./✓	X/भ.	X/भ.
	सुषम दुषम	भ./✓	भ./✓	भ./✓	भ./✓
	दुषम सुषम	भ./✓	भ./✓	भ./✓	भ./✓
	दुषम	भ./✓	भ./✓	भ./✓	भ./✓
	दुषम दुषम	भ./✓	भ./✓	X/भ.	X/भ.
	बाह्य द्वीप समुद्र	भ./✓	भ./✓	भ./✓	X/भ.
. गति	नारक-देव	भ./✓	भ./✓	X	X
	तिर्यञ्च	भ./✓	भ./✓	भ./✓	X
	मनुष्य	भ./✓	भ./✓	भ./✓	भ./✓
. भव्य	भव्य	भ./✓	भ./✓	भ./✓	भ./✓
	अभव्य	X	X	X	X
. संज्ञी	संज्ञी	भ./✓	भ./✓	भ./✓	भ./✓
	असंज्ञी	X/भ.	X/भ.	X	X
	नोसंज्ञीनोअसंज्ञी	X/✓	X	X	X/✓
. उच्छ्वास	श्वासक	भ./✓	भ/✓	भ/✓	भ/✓
	अपर्याप्त (अश्वासक)	X/✓	X/भ✓	X	X/✓
. दृष्टि	(व्यवहार से)				
	मिथ्यादृष्टि	भ./✓	भ./✓	~~भ.~~/X	X
	सम्यग्दृष्टि	X	X	भ/✓	भ./✓

		(निश्चय से)				
		मिथ्यादृष्टि	X	X	X	X
		सम्यग्दृष्टि	भ/✓	भ/✓	भ/✓	भ/✓
9.	आहारक	आहारक	भ/✓	भ/✓	भ/✓	भ/✓
		अनाहारक	X/✓	X/भ	X/X	X/भ
10.	पर्याप्त	पर्याप्त	भ./✓	भ./✓	भ./✓	भ./✓
		अपर्याप्त	X/भ.	X/भ.	X	X
11.	सुप्त	व्यवहार-				
		द्रव्य सुप्त	X/✓	X/✓	X/✓	X/✓
		भाव सुप्त	भ/X	भ./X	भ/X	भ./X
		निश्चय-				
		द्रव्यसुप्त	X/✓	X/✓	X/✓	X/✓
		भाव सुप्त	X	X	X	X
12.	जन्म	अंडज+पोतज	भ./✓	भ/✓	भ/✓	X
		जरायुज	भ./✓	भ./✓	भ./✓	भ./✓
		औपपातिक	भ./✓	भ./✓	X	X
13.	स्थिति	उत्कृष्ट-7कर्म	X	X	X	X
		-आयु	X/✓	X/✓	X	X
		मध्यम	भ./✓	भ./✓	भ./✓	भ./✓
		जघन्य-7कर्म	X/✓	X/भ.	X/X	X/✓
		-आयु	X	X	X	X
14.	वेद	पु, नपुं, स्त्री	भ./✓	भ./✓	भ./✓	भ./✓
		अवेदी	X/✓	X/भ.	X/X	X/✓

5. संज्ञा	चार संज्ञा वाले	भ./✓	भ./✓	भ./✓	भ./✓
6. कषाय	कषायी	"	"	"	"
	अकषायी	x/✓	x/भ.	x	x/✓
7. आयु	आयु संख्य वर्ष	भ/✓	भ/✓	भ/✓	भ/✓
	असंख्य वर्ष	भ/✓	भ/✓	x	x
. ज्ञान	मतिश्रुत ज्ञानी (निश्चय)	भ./✓	भ./✓	भ./✓	भ./✓
	" अज्ञानी (व्यवहार)	"	"	"	"
	अवधिज्ञानी	भ/✓	भ./✓	x/✓	भ./✓
	मनःपर्यवज्ञानी	x/✓	x/✓	x	भ./✓ x
	केवली	x/✓	x	x	x/✓
योग	त्रिविध योग	भ./✓	भ/✓	भ/✓	भ/✓
	द्विविध "	x/भ.	x/भ.	x	x
	एकविध "	x	x	x	x
त्रिविध	औदारिक काययोग	भ/✓	भ/✓	भ/✓	भ/✓
	वैक्रिय "	भ/✓	भ/✓	x/✓	भ x/✓
	आहारक "	x/✓	x/✓	x	x/✓
	तैजसकार्मण "	x/✓	x/भ.	x	x/✓
0. उपयोग	साकार-अनाकार	भ/✓	भ/✓	भ/✓	भ/✓
. शरीर	औदारिक	भ/✓	भ/✓	भ/✓	भ/✓
	वैक्रिय	"	"	x/भ.	x/भ.

शेष शरीर में 19. योग द्वार अनुसार

22.	संस्थान	6		भ/✓	भ/✓	भ/✓	भ/✓
23.	संहनन	6	"	"	"	"	"
24.	मान	जघन्यावगाहना देवनारक		×/भ.	×/भ.	×	×
		मध्यम-उत्कृष्ट "	"	भ./✓	भ./✓	×	×
		एकेंद्रिय+संमू. मनुष्य		×	×	×	×
		जघन्यावगाहना विकलेंद्रिय		×/भ.	×/भ.	×	×
		मध्यम-उत्कृष्ट "	"	×	×	×	×
		जघन्यावगाहना तिर्यंच(पंचें)		×/भ.	×/भ.	×	×
		मध्यम उत्कृष्ट "	"	भ./✓	भ./✓	भ./✓	×
		मध्यमावगाहना गर्भज मनुष्य		"	"	"	भ./✓
		उत्कृष्टावगाहना	"	"	"	×	×
		जघन्यावगाहना	"	×/भ.	×/भ.	×	×
25.	लेश्या	द्रव्य से ~~6 अशुभ~~ 6		भ./✓	भ./✓	×	×
		भाव से 3शुभ		"	"	भ./✓	भ./✓
		~~द्रव्य से 3 शुभ~~		-	-	-	-
26.	परिणाम	वर्द्धमान+ अवस्थित		"	"	"	"
		हीयमान		×/✓	×/✓	×/✓	×/✓
27.	वेदना	साता/असाता		भ./✓	भ./✓	भ./✓	भ./✓
28.	समुद्घात	असमवहत जीव		"	"	"	"
		केवलिसमवहत जीव		×/✓	×	×	×/✓
		शेष समवहत जीव	"	"	×/✓	×/✓	"

9.	निर्जरा सभी कर्म की	भा/✓	भा/✓	भा/✓	भा/✓
2.	उद्वर्तन नारकानुद्वृत्त	"	"	×	×
	नारकोर्बुद्वृत्त	"	"	भा/✓	भा/✓
	देवानुद्वृत्त	"	"	×	×
	देवोद्वृत्त	"	"	भा/✓	भा/✓
	तिर्यगनुद्वृत्त (संज्ञी)	"	"	"	×
	तिर्यगुद्वृत्त	"	"	"	भा/✓
	मनुष्यानुद्वृत्त	"	"	"	"
	मनुष्योद्वृत्त	"	"	"	×
	विग्रह गति	×/✓	×/✓	×	×
1.	आश्रव ज्ञानावरण+मोहनीय को न बांधता जीव	भा/✓	भा/✓	भा/✓	भा/✓
1-35.	अलंकारादि मुक्त अमुक्त मुञ्चन्	"	"	"	"

इति श्रीआवश्यकसूत्रस्य भद्रबाहुस्वामिकृतनिर्युक्तौ प्रत्ययगिरीयविवरणं हारिभद्रीयावश्यके चूर्णौ प्रत्यधारिहेमचन्द्रसूरिकृतटीप्पणके च अर्थान्तरैः विशेषैश्च सह हिन्दीभाषामयं लिखितम्। द्वितीयो भागः पूर्णः।

समाप्तिवासरः भा.व.3, वि.सं. 2073
स्थानम् - श्रीकैलाशनगरजैनसङ्घः, सूर्यपुरीनगरी (सुरत)